सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ

शैलेश मटियानी

अनुभूति प्रकाशन
५३ करेलाबाग इलाहाबाद २११००२

सुहागिनी तथा अन्य कहानियाँ

मुख्य वितरक
जयभारती प्रकाशन
४४७, पीलीकोठी कीडगंज
इलाहाबाद-२११००३

प्रकाशक
अनुभूति प्रकाशन
५३ करमपुर
इलाहाबाद-२११००२

संस्करण १९८८

मूल्य ४० ०० रुपये

आवरण शिवगोविन्द पाण्डेय

मुद्रक
पियरलेस प्रिन्टर्स
१ बाई का बाग
इलाहाबाद-२११००३

उमेशचन्द्र पाण्डेय को

सादर

कथाक्रम

□

कठफोड़वा

पूरे दो वर्षों के अन्तराल पर आज चदन का तिलक माथे पर लगाया धरणीधरजी ने, तो लगा, किसी तप्त तवे पर ठडे पानी की एक बूँद लुढका दी है। थोड़ी देर तक उन्हें अपने माथे के इर्द गिर्द ही नही, बल्कि भीतर तक चदन की गन्ध अनुभव होती रही। रात-भर के आक्रोश और जागरण से सतप्त ललाट पर रचा चन्दन तिलक ऐसा लगा, जैसे गरम तवे पर पानी की बूद थरथराती उसे शीतल करती जा रही हो। अनिद्रा से दुखती आँखो के आगे दिशा खुलते ही नहाकर, जलाभिषिक्त फूल उनके सिर पर रख देने वाली तारा पडितानी की आकृति कही पास ही उपस्थित छाया सी झिलमिला गई अध्यपात्र के जल मे छाये चद्रबिम्ब जैसी शान्त आकृति।

अनायास ही धरणीधरजी के दायें हाथ की अगुलियाँ सिर पर पहुँच गइ और उन्हें लगा कि शिखाहीन मस्तक पर उँगलियाँ तपे तवे पर पडे हुरे तिनको की तरह झुलसती चली जा रही हैं।

सामने बालकनी मे सुप्रिया मसी का 'गोल्डन परेट' भी पिंजरे की सीको की धार मे देह को धुन रहा है। उसके मुलायम मुलायम, रगीन रेशे उनमे चिपकते चले जा रहे हैं। नीचे जल-भरा कटोरा रखा हुआ है और प्लास्टिक की छोटी-तश्तरी मे सेब की फाँकें!

धरणीधर उप्रेतीजी की दृष्टि सामने की छोटी सी मेज पर चली जाती है। जहाँ उनके सुबह के नाश्ते के तौर पर एक तश्तरी मे आमलेट, एक मे डबलरोटी के टुकडे रखे हुए हैं। साथ मे कलई के गिलास मे चाय भरी हुई है।

सुप्रिया मसी आज भी काम पर एकदम सवेरे ही चली गई है। इधर फर्म के मैनेजर का काम काफी बढ गया है, इसलिए एक 'सिटिंग' शाम को

और एक सवेरे देती है। रात का खाना कभी-कभी धरणीधरजी खुद ही बना लेते हैं, कभी डबलरोटी से ही गुजारा हो जाता है। सुप्रियामसी आमलेट या अंडों की भुजिया बना लेती है। उप्रेती जी को इधर अंडा से अरुचि सी होती चली आई है। सुप्रिया मसी काँच के छोटे गिलास में थोड़ी सी ह्विस्की देती है। उप्रेतीजी आमलेट का टुकड़ा उँगलियों से ही उठाते हैं, अकारण ही कुछ-कुछ कांपते-जसे ओठों पर उन्हें पोंछते हैं और ह्विस्की का गिलास मुँह से लगा लेते हैं। अन्दर आत्मा के तवे पर काँपती जो स्मृतियाँ सुप्रिया मसी का देखते ही तेजी से थरथराने लगती हैं, ह्विस्की की घूँटों के अन्दर पहुँचते ही, जाने कहाँ अपने आप में ही डूब जाती हैं और धरणीधरजी मसी, अपने ही भीतर काँपते धरणीधर पंडित की आग में तपे हुए ताँबे की प्रतिमा जैसी प्रतिच्छाया को सुप्रिया मसी की हथेली पर रख नहीं पाते हैं।

गुड नाइट, डियर' कहते हुए सुप्रियामसी, ओठ उनके माथे पर रखती लम्बे लम्बे पालिश से चमचमाते नाखूनों वाली उँगलियों को हिलाती, बिस्तर पर चली जाती है। एक अजीब सी खिसियाहट से अकुला अकुलाकर, धरणीधर पंडित अपने सिर पर हाथ फेरने लग जाते हैं। कभी कहीं एक स्थान-मा था, जहाँ बहुत घनी शिखा थी, अब कर्मकांडी पंडित रहे होने का एक धुंधला अहसास भर शेष रह गया है।

कभी कभी धरणीधर जी को अपना शिखाहीन सिर किसी ऐसे चबूतरे की तरह लगने लगता है जिस पर उगा आम का वृक्ष काट दिया गया हो। 'इंग्लिश कट' वालों के बीच उसका ठूठ भर बाकी रह गया है। इधर बहुत दिनों से इसी ठूँठ पर उँगलियाँ कठफोड़वा पक्षी की तरह कुट कुट करती हुई—कट जाने की जगह, कहीं अपने ही अन्दर धँसे हुए मूल संस्कारों के वृक्ष को—टिकोरती चली जाती हैं और धरणीधर जी को लगता है, पादरी शेरसिंह जानसन ने उनकी जिस शिखा को कटवाकर मिशन कम्पाउण्ड से बाहर फिकवा दिया था, वह घूरे के ढेर पर पड़ी आम की गुठली की तरह फिर उनकी ही आत्मा के अन्दर फूट आई है।

—और अपने ही अन्दर उगे हुए वृक्ष को काट पाना संभव नहीं है। कमरे के बाहर मिस्टर डी० डी० मसी की नेम प्लेट' लगी हुई है, मगर कमरे के अन्दर हमेशा धरणीधर उप्रेती ही बैठे हुए रहते हैं। धरणीधरजी को लगने लगा है जिन ओढ़े हुए संस्कारों के कारण उन्होंने तारा पंडितानी को अपने लिए अनुपयुक्त और हीन पाया था, उन्हीं के कारण अब खुद अपने को सुप्रियामसी के लिए फालतू अनुभव करने लगे हैं। पश्चाताप का आत्म-

वृक्ष दिन रात निरंतर बढ़ता ही चला जा रहा है। अब तो उसका फैलाव इतना बढ़ चुका कि पसलियों से टकराता अनुभव होता है। किसी खंडहर में उगे विशाल वृक्ष के पौधे की तरह जिसकी छत ज्यों-की-त्यों बनी हुई हो, कटकर अतीत की वस्तु बन जाने की जगह, कहीं अपने ही अंदर डूबी शिखा ऊपर को उठती ही चली आ रही है और धरणीधर पंडित का मनस्ताप, कठफोड़वा पक्षी की चोंच की तरह, उनके शिखाहीन मस्तक की पोली सतह को कुटकुटाता चला जा रहा है—

ओंकार बिंदु संयुक्तं नित्यंध्यायन्ति योगिनः कामदं—मोक्षदं चैव—

मोक्ष? अब भी क्या मोक्ष सम्भव रह गया है?

उँगलियाँ शिखा की गाँठ बाँधने के प्रयत्न में एक दूसरे से टकरा गईं, तो धरणीधर जी को हुआ कि जड़ से कुटकुटाते वृक्ष के शिखर तक पहुँचने के प्रयत्न में लगे कठफोड़वा-जैसे आत्मदंश को तो अब इस देह के साथ ही मुक्ति मिलेगी। देह मुक्ति की कल्पना करते ही धरणीधरजी की आँखों के आगे काठ का लम्बा ताबूत उभर आया और उसके अन्दर पड़ा अपना शव उन्हें कठौती में मरे पड़े मेढक जैसा वीभत्स दिखाई दिया। हीराडुंगरी के कब्रिस्तान की तमाम कब्रें कल्पना के कुहासे को चीरती सी उनके सामने फैलती चली गईं। कब्रों के सिरहाने गड़े सलीब उनकी आँखों में उभरते चले गए और उन्होंने चंदन की सिल्ली को पथरी पर जल्दी जल्दी घिसना शुरू कर दिया।

सुप्रियामसी वहीं से दफ्तर चली जाएगी, धरणीधरजी जानते थे। जिस फर्म में सुप्रिया लेडी-टाइपिस्ट है, उस फर्म में धरणीधरजी के सहपाठी मिस्टर सक्सेना जनरल मैनेजर हैं। कलकत्ता रहते हैं मगर दिल्ली आते हैं, तो धरणीधरजी के पास वे जरूर आते हैं। उन्हीं के कहने पर सुप्रिया को 'स्टेनो' के बराबर वेतन मिल रहा है। यदि सुप्रिया दिल्ली ब्रांच के मैनेजर मिस्टर रँधावा के आदेश पर उनकी कोठी पर जाकर काम करने से इन्कार भी कर देती, तो भी उसकी नौकरी पर आँच आने का कोई अंदेशा नहीं था। पिछली बार तो सक्सेना साहब ने धरणीधरजी से कहा भी था कि यदि वह दिल्ली-बम्बई के शाखा कार्यालयों या कलकत्ता के मुख्य कार्यालय में खुद भी कोई नौकरी करना चाहते हो, तो कहें। मगर दिल्ली पहुँचने पर धरणीधरजी के सामने नौकरी की समस्या अवश्य थी अब नहीं है। इतना अब वह अच्छी तरह समझ गए हैं कि सुप्रियामसी और उनके संस्कारों के

अर्तावरोधो की वह दीवार तो दोनों ही स्थितियो मे ज्यो की-त्यो बनी ही रहेगी, जिसे सुप्रियामसी तो शायद ढहाने की कोई आवश्यकता ही अनुभव नही करती और वह चाहने के बावजूद ढहा नही पाते ।

सुप्रियामसी जो कुछ पहले थी, वही अब भी है। उसके सस्कारो मे प्रत्यातर की स्थिति कभी आई ही नही। बचपन से ही जिस प्रकार की शिक्षा दीक्षा सस्कारा के बीच वह पलती आई, उसे कुछ भी बदलना नही पडा है। लेकिन, धरणीधरजी को अपने सस्कारो को सुप्रियामसी के सस्कारो के ही नही, बल्कि धम के अनुरूप भी ढालने के प्रयत्न लगातार करने पड़े हैं। और चूकि उनके धर्म-परिवतन के मूल मे किसी प्रकार की आत्म निष्ठा नही सिफ सोनोमसी की देह और उसके उन्मुक्त आभिजात्य का आकपण मात्र था, सो इस आकपण के घटने के साथ-साथ ही ओढी हुई धम निष्ठा छीजती चली जा रही है। पश्चाताप के तेज अधड मे जब ओढे हुए सस्कार एकदम दूर-दूर छितरा जाते है, तो फिर वही तीन वष पहले के कमकाडी ब्राह्मण की खोखुरी शिखा कही शून्य मे प्रश्नचिह्न बनी खडी दिखाई दने लगती है। जैसे तेज आधी से, पतझड के पत्तो के उड जाने पर, उनके नीचे ढका किसी उजाड वन मे का उद्भूत शिवलिंग एकाएक उदित हुआ दिखाई देने लगे और अपनी ही मूल झाकी को देखते ही धरणीधर पडित एकदम बेचैन हो उठते है। ओढे हुए सस्कारा से उसको ठीक वैसे ही ढकने का प्रयत्न करते हैं, जैसे कुंवारी मा अपने सद्य जात शिशु को ढकती हो। मगर अड्तीस बरसो के प्रौढ धरणीधर पडित को ढक पाने म चद वर्षों का मिस्टर डी० डी० मसी असमथ हो जाता है।

पिछले कुछ दिनो से धरणीधरजी को लगने लगा कि कोई भी वृक्ष अपन ही पत्तो से अपने को नही ढक सकता।

उन्हे लगता है बचपन म कर्मकाण्डी रह चुका कोई ब्राह्मण बाद म आरोपित आचरण से अपने मूल सस्कारो के आम्रवृक्ष को ढक नही पाता। अपने अदर ही दफन किया हुआ हर सस्कार घूरे पर पडी आम की गुठली की तरह फूट फूट आता है और वक्ष, वृक्ष के बाद वृक्ष और हरेक वृक्ष पर कठफोडवा की खुट खुट सुनाई देने लगती है—और अदर एक बियाबान जगल की सी अनुभूति होने लगती है। इतना बडा दिल्ली शहर क्षण भर मे वीराना हो जाता है। घर म ही कब्रिस्तान आभासित होता जाता है। सुप्रिया उनके अनुमान के प्रतिकूल, रघावा साहब के साथ ही दफ्तर चले जाने की

जगह, अचानक घर पर आई थी। कमरे मे आते ही सुप्रियामसी ने 'गोल्डन पैरेट' के पिंजरे को छोटे बच्चे के पालने की तरह आर पार झुला दिया। फिर सेब की पतली फाको वाली नन्ही-सी तश्तरी उसके आगे रखी। पानी का कटोरा भी पास सरका दिया। अपने पतले पतले ओठो की चोंच-जैसी बनाते हुए 'मिट्ठू, माई स्वीट स्वीट-स्वीट !' कहकर, उसके माथे के बीचो-बीच चूमा। फिर, सींको पर लगे उसके पखो के रेशो को पोछती बोली—'क्यो, डियर, अपने ही खूबसूरत जिस्म पर इतना गुस्सा क्यो आ रहा ?'

अच्छी तरह स्मरण है, इस सारे परिदृश्य से स्वय को असलग्न करने मे इद्रियो को साधे धरणीधर जी को कि सुप्रियामसी के तोते के साथ के सारे कायकलाप तथा स्पश जैसे हवा मे घुलते हुए से उन तक पहुँचते अनुभव होते रहे थे और आखिर-आखिर उन्हें घर से बाहर निकल आना पडा था। बडी देर तक सामने सडक पर की भीड की जगह कल्पना मे उत्तर दिशा मे अल्मोडा के हीराडुंगरी वाले मकान से पृथिवी के अन्तिम छोर की तरह खडे भासित होने वाले हिमालय को देखते रहे थे। जहाँ उस पार का सब-कुछ ओझल रहा करता था।

चन्दन की पथरी को धरणीधरजी ने धीमे से मेज के नीचे सरका दिया। जमीन से उठकर कुर्सी पर बैठ गए, मगर सुप्रिया की उपस्थिति के बावजूद आमलेट की प्लेट को अपनी ओर खींच नहीं पाए। सुप्रियामसी के ललाट पर खिचती रेखाओ को भी वह नही देख पाए। एक ओर पडी कुर्सी लेकर, सुप्रिया, उनके सामने की ओर बैठ गई। आमलेट और स्लाइस की तश्तरियाँ उनकी ओर सरकाती बोली—'क्यो पडित जी, आज भी कोई एकादशी-बेकादशी है क्या ?'

धरणीधर आसानी से कोई उत्तर दे नही पाए। सुप्रिया जब भी उनसे खीमती है 'पडित जी' कहकर सम्बोधित जरूर करती है और उन्हें लगता है, डी० डी० मसो के ताबूत के अन्दर लेटा धरणीधर पडित एकदम बेचैन होकर करवटें बदल रहा है। ऐसे मे उन्हें सकोच और अनुराग मे डूबी तारा पडितानी की याद हो आती है। आधी नासिका तक धोती की किनारी को झुलाए हुए, बिना सीधे सम्बोधित किये ही, वधू की तरह लजा लजाकर उनका बातें करना याद आता है। तीन बच्चो की माँ बन जाने के बावजूद, कभी एकदम यो समानान्तर बैठते हुए उन्हें कभी पडित जी या कुछ और कहकर सीधे सम्बोधित नही किया था। अब सुप्रियामसी की समानातर

रेखाओं को काटती तिर्यक रेखा-जैसी तमतमाई आँखें नहीं झेली जाती हैं तो नीचे को झुके सूरजमुखी के फूलों जैसी तारा पंडितानी की हमेशा एक आर्द्रता में डूबी सी रहने वाली आँखें कितनी याद आती हैं।

'क्या बात है, पंडितजी महाराज? अपने आप पर ही गुस्सा क्यों हो रहे हैं? ब्रेकफास्ट' क्यों नहीं लिया? रात देर से आई और सवेरे जल्दी चली गई, इसलिए?' प्रश्न करते-करते सुप्रियामसी का चेहरा और भी तमतमा आया—'तुम तो कुछ बोलोगे नहीं। न तुम नौकरी करोगे, न मुझे करने दोगे। मैं तुम्हें बहुत 'प्रोग्रेसिव और 'लिबरल माइंडेड' समझती थी डी० डी०। मगर लगता है तुम्हारे भीतर का पंडितपना ज्यों का-त्यों बना है। तुम मुझे अब 'टालरेट' नहीं कर पा रहे, डी० डी०।'

धरणीधर ने अनुभव किया, आवेश के कारण सुप्रियामसी की आँखें डबडबा आई हैं। उन्हें लगा यों चुप रहकर, वास्तव में सुप्रिया के लिए कुढ़ने की स्थिति पैदा कर रहे हैं। इधर अक्सर ही एक अजीब सी ग्लानि उन्हें अपने प्रति हो आती है। सुप्रिया की ओर पूरी आँखें उठाकर देख नहीं पाते हैं। उन्हें लगता है, उनकी इस मानसिक हीनता का अर्थ सुप्रिया के लिए सिर्फ यही हो सकता है कि वह सोचे कि उन्हें यही शंका है कि सुप्रिया ने अन्य पुरुषों से सम्बन्ध जोड़े हैं और उनकी स्थिति इस प्रकार के सम्बन्धों पर चुप्पी साधे, एक आत्म गौरव शून्य व्यक्ति की है।

कुछ क्षणों तक वो जैसे सुप्रिया को स्मृतिपटल पर ही देखते रहे। अपना ब्राह्मण वेश में निकलना और राह चलते सुप्रिया की स्कर्ट या गाउन में 'हैलो, सर!' फिर लगातार भीतर किसी चिड़िया की चहक की तरह मँडराती आवाज के चिह्न अभी बाकी हैं जरूर।

उम्र भी कितनी कठिन वस्तु ठहरी। तब सुप्रिया के 'हैलो सर!' जैसे संक्षिप्त सम्बोधन से ही आस-पास का सारा वातावरण तक तरंगित होता जान पड़ने वाला ठहरा—और अब कुछ नहीं ठहरा। वह हवा का झोंका पाते ही शरीर का वृक्ष की तरह का सा आन्दोलित होना पूरी तरह विगत हो चुका ठहरा। जिसने भोर की प्रकृति की ताजगी और अनाविलता को देखा और अनुभव किया हो उसके सिवा कौन इस बात का अंदाज लगा सकने वाला ठहरा कि तरुणाई और प्रौढ़ावस्था के बीच का सारा वक्त किसी पहाड़ी नदी के ऊपर का काठ का पुल हो जाने वाला हुआ। जरा सा पाँव धरो नहीं कि बोल पड़ने वाला जरूर ठहरा लेकिन जो उस पार वो वहीं हुआ—जो इस पार वो यहीं।

अपनी एक लम्बी मनोयात्रा पूरी कर चुकने की सी थकान मे, आखिर बोले—'सोनी, माफ करना पडिताऊपन के लिए। आज तुमसे कुछ भी छिपाऊँगा नही। 'छिपाऊँगा नही ?' कहते कहते, धरणीधरजी का गला कुछ खुल आया। धीरे धीरे शात आँखो को सुप्रिया की ओर उठाते बोले—'उलाहना गलत नही, सोनी मगर सच है कि मेरे सामन तुम्हें 'टालरट' करने की 'प्राब्लम' उतनी नही बल्कि असल बात है यह कि मैं खुद को 'टालरेट' नही कर पा रहा। तुम्ह नही सह पा रहा होता, तो या तुम्ह अपने अनुशासन मे रखने की या खुद तुम्हारे अनुकूल हो रहने की कोशिश करता। मगर मैं तुम्ह अपने नही, बल्कि अपने को तुम्हारे लिए बोझ महसूस करन लग गया।'

'लेकिन डी० डी०, वजह तो यही है न कि तुम्हारे मन मे कही यह शुबहा भर गया है कि मैं लूज करक्टर' की हो गई। रियली इट इज ए वडर फार मी, डी० डी०, कि मेरे लिए अपने हिन्दू धम और सारी जात बिरादरी को छोड देनेवाले तुम अब इस कदर शक्की होते जा रह ? कभी तुमने इसी बात पर अपनी 'वाइफ' को छोड दिया कि वह निहायत बैक्वड और दकियानूसी औरत है। तुम्हे 'डीपली लव' नही करती। तुम्हे आमलेट बनाकर नही देती, तुम्हारे साथ घूमने फिरने नही जाती है और अपने हिन्दू धम का तुम 'हेट' करते कि तुम्हारे बिरादरी ब्राह्मण बहुत ही ज्यादा दकियानूस और 'मीन मटेलिटी' वाले तुम्हारे मेरे बीच के लव एफेयर से चिढते ह ? मगर मुझे लगता है यह सब तुम्हारा दिखावा ही था। एम तो तुम्हारा जैसे-तसे 'कर्नावस' करके, मुझसे अपनी 'लस्ट' को पूरा करना था बस !'

सुप्रिया की आँखो से आँसू लुढकते जा रहे थे और मेज पर रखी हथेलियो की पीठ पर गिरते जा रहे थे। उँगलियो को मेज पर टिकाये टिकाये वह हथेलियो को, पानी से बाहर निकलकर जोर जोर से सास लेती मेढकी की तरह हिलाती चली जा रही थी। धरणीधर कोई उत्तर नही दे पाये, तो फिर बोली—'मैं सीधे दफ्तर ही जान वाली थी, मगर आज सवेरे सवेरे जसी आँखो से तुमने मुझे देखा, यही 'फील' होता रहा कि तुम मेरे पीछे लगे हो और दफ्तर तक भी पीछा करोगे। इतनी 'जोलसी', ऐसी 'मीन मेटेलिटी' और 'इम्पेशेंस' तो तुम मे नही होनी चाहिए, डी० डी० ? मुझे तो देखकर हैरानी होती है कि किसी जमाने म अग्रेजी रहन सहन और 'सोसाइटी-लाइफ' के हिमायती तुम आजकल कभी मेरी एब्सेंस पाते ही चुपके से पडिताऊ धोती पहनकर खिचडी पकान लगते हो। 'डाइनिंग टेबिल, पर खाने की जगह लकडी का पट्टा लेकर

किचन मे बठ जाते हो और खिचडी परोसने के बाद उसके ऊपर हाथ घुमाते हुए, चारो तरफ पानी के छीटे छिडकने लगते हो ? मैं अधी नही, डी० डी० ! अक्सर देर तक बाहर छिपी तुम्हारी तमाम पहिताऊ 'एक्टीविटीज' को देखती रहती हूँ। दफ्तर जाते समय 'किचन' की खिडकी के पास खडी रह जाती हूँ। 'बाइबिल' की जगह 'गुटका रामायण' पढते कई बार देख चुकी तुम्हे। और आज—आज मैं तुमसे यह पूछना चाहती हूँ डी० डी०, कि जब तुमको 'क्रिश्चनिटी' पर 'फेथ' ही नहीं था, तो तुमने अपनी चुटिया और जनेऊ को उतारा क्यो ? मैं तो यही समझती थी कि अपनी पूरी फेमिली और हिन्दू धरम को छोडकर तुम क्रिश्चनिटी को कबूल कर रहे हो, तो ईसा मे तुम्हारा बहुत बडा 'फेथ' है। मगर, डी० डी० नाऊ आई फील दैट, आई वाज इन डाक !'

'नहीं सोनी, अधेरे मे तुम नही थी, मैं था। तुम अपने धर्म अपने जिन सस्कारो के उजाले मे तब थी, आज भी उसी मे हो। मगर मैं निश्चित रूप से अँधेरे को ओढता चला आया, इसीलिए आज भी अँधेरे मे हूँ और तुम्हें भी उसी में डूबा देखता हूँ। तुम मेरी सारी हरकतें देखती रही हो सोनी, मगर तुम जिस तरह मेरा पीछा करती रही हो, मैंने कभी तुम्हारा पीछा नही किया। मुझे तो आज तक अपना ही पीछा करते रहने से मुक्ति नही मिली।' धरणीधर बोले—सोनी, मुझे यह स्वीकार करते कोई हिचक नही कि वास्तव मे ईसाई धर्म पर मेरी कोई निष्ठा नही, मगर इसका मतलब यह भी नही कि मेरी निष्ठा हिन्दू धर्म पर है। हिन्दू धर्म पर अगर मेरी कभी निष्ठा रही भी होगी, तो वह तुम्हारे आकर्षण से कही बहुत छोटी ही रही होगी। अब तो यही लगता है, सोनी, कि आदमी जब तक अन्दर से नहीं बदले, बाहर से बदलने की कोई 'वैल्यू' नही। धर्मनिष्ठा भी जब बाहर से ओढी जाती, तो एक बोझ की तरह सिर पर लदी रहने वाली हुई। कभी कभी आदमी नदी की तज धारा म बह जाने वाला हुआ। स्त्री उसके जीवन की मुख्यधारा हुई। किसको जो पालूँ, कैसी को जो पालूँ की व्याकुलता मे रह जाने वाला हुआ आदमी, जबकि उसके भीतर भी वैसा ही वेग उपस्थित हुआ—जैसा कि धारा मे। तुम्हारे अथाह प्रेम के दिनो को आज भी कहाँ भूल सकने वाला हुआ ?'

उन्हें लगा—जैसे कोई बाँध टूट गया हो। अपने इद गिर्द एक मोहक धुध के एकत्र हो गये होने की-सी अनुभूति हुई। लगा कि जैसे कोई, एक झिलमिल आवरण में करता हुआ-सा कानों म मंत्रपाठ—जैसा कर रहा है कि यही समय है।

सुप्रिया कुछ स्तम्भित हुई-सी, कुर्सी पर चुपचाप बैठी थी। कितने वर्षों का अंतराल है, इस पतित की वाणी को इस तरह सुनते रहने के बीच ?

'पतित कम ही सबसे स्वादिष्ट समझा जाने वाला हुआ, सुप्रिया ! तुमको इन्टर में पढ़ाया हुआ ठहरा। जमाना बीत गया, लेकिन सहर इतना मशहूर हुआ हमारा कि इधर मेरा चौक से निकलना, उधर नरायण सयाड़ी दवाल से तहम्म तक के बीच में लगभग हर दूसरे-तीसरे तुम्हारा 'हैलो भर' पुकारना। —पहले एक फार्मेलिटी—जैसी हुई 'हैलो, सुप्रिया' कहने में आगे निकल चला। धीरे धीरे तुमने तितली के से पंख खोलने शुरू किये तो 'हैलो, सुप्रिया, हाऊ आर यू ?' कहते हुए तुम्हारे कंधों को स्पर्श करने का सिलसिला शुरू हुआ। देवाल से जेल तक के बीच में कितना एकांत दिखाई पड़ने वाला हुआ तब ! फिर धीरे-धीरे तुमने 'जरा इन्हें पढ़ियेगा, सर!' कहते हुए समाचारों को थमाते हुए, मुझको अपनी ही कल्पना की दुनिया में खींचना शुरू किया—इसमें कब हिंदू धर्म के कर्मकाण्ड हाथों से छूटते गये, कब आखिर आखिर तुम्हारे साथ गिरजे की प्रार्थना में शामिल होना शुरू हुआ—बीच में एक संयोग—जैसा घटित हो गया ठहरा !—मेरा ईसाई होना ईसा की नहीं तुम्हारी खातिर हुआ, सुप्रिया !'

सुप्रिया कुछ बोली नहीं, सिर्फ उँगलियों से मेज को थपथपाना शुरू कर दिया, जैसे अपने भीतर की उथल-पुथल के कम्पनों को गिन रही हो। धरणी धर ही बोले—'मैं कुछ नहीं जानता, कब, कैसे शुरुआत हो गई। जैसे कोई कब्र में का मुर्दा उठ खड़ा हुआ हो—जैसे कोई पूर्व जन्म का प्रेत जागता गया और जो कर्मकाण्ड मंत्र पाठ बाढ़ में बह गये थे, जाने कब फिर अपनी जगह वापस आने चले गये। कब प्रभु ईसा के सुभाषिता की जगह दुर्गा सप्तशती की 'या देवि सर्वभूतेषु' में चिर शांति अनुभव करने लगा—कब तारा को त्यागने की बात ने 'पापोऽहं पापकर्माऽहं' की ग्लानि में ला पटका—कुछ नहीं जानता, सुप्रिया ! तुम्हारी तरफ को एक बाढ़ में बहा था—दूसरी एक बाढ़ आई, तुमसे पीछे हटना शुरू होता गया।—आय एम ए गिल्टी परसन, सुप्रिया ! आई हैव डिसीव्ड बोथ आफ यू सिंसियर वूमेन ! क्रिश्चियनिटी हैज आलसो लूज्ड इट्स मीनिंग फार मी—'बात पूरी करते-करते उनका गला रुँध गया।

साल भर के गुमसुमपन के बाद, आज धरणीधर जी को यों मुक्त भाव से बोलते देखकर, सुप्रिया को एक आश्चर्य में डुबो देने वाला-सा सुख मिल

रहा था। उसे लगा, जिन आरोपो को वह खुद धरणीधरजी पर लगाना चाहती, इतनी शात भाषा मे खुद ही स्वीकार कर उन्होंने उसके गुस्से को कितना कम कर दिया है।

इस बार, उलाहना देते भी, सुप्रिया का स्वर जैसे अपने आप ही कोमल हो गया—'तो तुम अब यह कहना चाहते हो डी० डी०, कि ईसाई धरम के लिए तुम्हारे या कि 'इन अदर वर्ड्स' ईसाई धरम के तुम्हारे लिए बेकार साबित हो जाने पर अब फिर से तुम हिंदू धरम के लिए काबिल पडित बन गए हो ? यानी टु बी वेरी फ्रैंक, यू वान्ट टु डाइवोर्स मी नाउ ?'

धरणीधरजी सिसिया गए। सुप्रिया के इस प्रश्न में उन्हें अपने लिए जो प्रताडना दिखाई दी, उन्हें लगा, उसके आगे वह बहुत छोटे पड गए हैं। जिन्दगी भर साथ निभाने का जिसे वचन दिया था, उससे सम्बन्ध विच्छेद की बात करते आत्मा कही बहुत बौनी सा हो ही आएगी। उन्होंने अनुभव किया कि अभी तक तो उन्होंने यह भी कुछ निश्चय नही किया कि उन्हें सम्बन्ध विच्छेद कर लेना है। इसलिए यह भी नही सोचा कि सुप्रिया से सम्बन्ध विच्छेद के बाद उनके जीवन की दिशा क्या होगी। ब्राह्मण समाज तो अब उन्हें स्वीकार करने से रहा। हाँ, शायद तारा पडितानी उन्हें आज भी वैसे ही स्वीकार कर सकती हैं जैसे कोई अपने आराध्य की निषिद्ध जल मे डूबी मूर्ति को स्वीकार ले ? मगर फिर बच्चो का भविष्य क्या होगा ? धरणीधरजी का ओढा हुआ धर्म जब उन पर आरोपित होने लगे, तब क्या उनके सामने भी ऐसी ही स्थितियाँ नही आयेंगी ? नही। किसी भी प्रकार का कोई रास्ता कही नही है। सुप्रिया के साथ यो ही जुडे रहना ही उनके जीवन की एकमात्र नियति रही है। कहने को मन हुआ कि 'सुप्रिया, कभी-कभी जीवन की कितनी छोटी-सी भूलो के कितने कठोर दण्ड भुगतने होते है आदमी को।'—मगर कह कुछ नही सके।

सुप्रिया की उँगलियाँ कभी चलती, कभी थमी रहती। डी० डी० के लगभग साल भर के पूरे वातावरण को तनाव मे रखने वाले गुमसुमपन के बाँध का टूटना जैसे उसे भी वैसे ही प्रवाह मे ले आया हो और वर्षों के बाद, फिर दोनों एक ही मोड पर आ गये हो।

पहली बार सुप्रिया को अहसास हुआ इस बात का कि जो व्यक्ति पत्नी और बच्चा को त्यागकर आया हो जब उसके प्रेम के ज्वार का बैठना और स्मृतियो का वेग शुरू होगा, तो उसके द्वन्द्व और पश्चाताप कितने प्रबल होगे।

बैठी-बैठी ही बोली—'मुझे अपना बंधन मानकर नहीं चलना। जो आया हो उसे वापसी का भी हक बनता जरूर है।'

'इस तरह की बातों का कोई मतलब तभी हो सकता है, सुप्रिया—जब रास्ते बाकी हों। काल इतनी आसान चीज नहीं। वापसी को भी वक्त चाहिए डियर! काल अब वहाँ नहीं ले जायेगा, जहाँ से चला था।—और अब तुमसे भी दूर होना चाहूँ कभी, वजह यह नहीं होगी कि ईसाई धर्म के प्रति वितृष्णा हुई, बल्कि वजह होगी इसकी यह कि चित्त भ्रम के कारण जीवन के सारे अर्थ नष्ट हो चुके होंगे। क्योंकि जैसे तुम्हें पाना ही ईसाई धर्म को पाना नहीं था, वैसे ही तुम्हें छोड़ना मात्र भी ईसाई धर्म को छोड़ना नहीं हो सकता सोनी!' कहते-कहते उनका गला भर आया।

सुप्रिया पास आकर, कंधे से लगकर खड़ी हो गई तो आत्मालाप करते से बोले—'मैं जितना कृतज्ञ तारा के प्रति हूँ, उतना ही तुम्हारे प्रति भी। दोनों में ही मैंने बहुत-से सुख पाये। तुम दोनों का उतना ही अपराधी भी हूँ। तारा बच्चों के पिता के दायित्व का भी खुद ही निबाहते हुए, मेरे अपराध क्षमा करती गई है। तुम भी मुझे क्षमा कर सकती हो, अपने लिए किसी अनुकूल को चुनकर। ऐसी स्थिति में भी मुझसे बड़ी ही रहोगी, सोनी, क्योंकि तुम अपनी ही दृष्टि में नहीं गिरी हो। सच पूछो तो मैं अब सन्यास ले लेना चाहता, सोनी! अब अपनी व्यग्रता को और ज्यादा ढोया नहीं जाता।'

सुप्रिया ने हलके से स्पर्श के साथ धरणीधर जी के आँसुओं को पोंछ दिया। ललाट पर हाथ फेरने लगी, तो चन्दन का तिलक दिखायी दे गया। पोंछने की जगह, हल्के से उसे छू भर लिया सुप्रिया ने। धरणीधर जी के प्रति उसका मन कोमल और संवेदनशील हो आया—'डी० डी०, छिच्छी, तुम औरतों की तरह रोते क्यों हो? मैं कल से मिस्टर रंधावा के घर नहीं जाऊँगी। मैं कल से तुम्हें कोई ऐसी वैसी शिकायत नहीं होने दूँगी, बस? कहो, तो यह नौकरी ही छोड़ दूँ? तुमने आज तक चुप रहकर और अपनी तकलीफों को खुद ही पीकर, मुझे भी तो बहुत लापरवाह बना दिया, डी० डी०! प्लीज, एक्सक्यूज मी!'

उन्होंने एकाएक ही सुप्रिया के दोनों हाथों को अपने हाथों में ले लिया और भावावेग में कई क्षणों तक ऊपर शून्य में उठाये रह गये।

उनके पूरे चेहरे पर थरथराहट थी। जैसे भीतर कोई भूकम्प हुआ हो। दोनों को एक-सी स्थिति में देखकर, या जाने क्यों इसी बीच एकाएक तोता बोलने लगा। धरणीधर जी ने एक झलक उसकी तरफ देखा, और 'थोड़ा बाहर टहल

कर, अभी लौटता हूं।' कहते हुए, बाहर की तरफ बढ़ गये।

किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी सुप्रिया उन्हें रोकने का प्रयत्न करने की जगह, डब डबायी आंखों से कुछ क्षण तो मेज के नीचे पड़ी चन्दन की पपरी को एकटक देखती रह गई। फिर ओस में भीगी-सी बाहर निकली। बारामदे में आकर, दूर तक झांका, लेकिन भीतर की व्याकुलता के लिये ओट खोजते धरणीधर सड़क पार के झुरमुटों के बीच कहीं ओझल हो चुके थे।

• •

लाटी

लाटी अपने करुण विलाप की मर्मवेधी चीत्कारो से इद गिद जुटे लोगो को ऐसे झकझोर रही थी, जैसे कोई अचानक बाढ़ पर आई नदी अपने प्रचण्ड प्रवाह से दोनो किनार खड़ी फसलो को झकझोर रही हो। उसके गूँगे कण्ठ का आर्तनाद लोगो मे एक ऐसी अनुगूंज भरता चला जा रहा था, जिससे व सब जल्दी ही मुक्त हो जाना चाहते थे और ऐसा सिर्फ तभी सम्भव था, जब लाटी अपना चीत्कार थाम ले। मगर, औरो की उपस्थिति से एकदम बेखबर, अर्द्धविक्षिप्त-सी उलझी लाटी, थमती ही नही थी। नदी के प्रचण्ड प्रवाह को झेलते किनारे के वृक्षो की तरह, लोग अन्दर ही-अन्दर ढहने को हो रहे थे और, ऐसे मे ही, कुछ लोग यहाँ तक कहने लगे, लाटी को पकडकर, मुह मे कपडा ठूंस देना चाहिए।

लाटी के विकट विलाप से सारे पडाव मे हाहाकार सा मचा था और आवश्यक काम छोडकर भी लोग उसके आस-पास भीड बढाते जा रहे थे।

अलमोडा, पिथौरागढ़, बेरीनाग वाली सडक पर का यह पडाव भैसिया छाना कहलाता था, हालाकि व्यवहार मे यह, भैसो की जगह, घोडो के ठहरने का स्थान ज्यादा था। पिथौरागढ बेरीनाग की तरफ जाते, या उस ओर से शहर की तरफ आते लद्दू व सवारी के घोडो की आमद यहाँ बनी रहती थी।

पडाव मे कुल दस-बारह मकान थे। उनकी छतो पर सर्दियो की धूप तापने या बडियाँ डालने को एकत्र हुई औरतें उकाबो के झुण्ड सरीखी दिख रही थी। यहाँ चारो ओर के गाँवो के रास्ते मिलते थे। यह चौबटिया भी कहाता था और आज से पहले भी इस चौराहे को चीरती हुई न जाने कितनी अर्थियाँ 'राम नाम सत्य है' की समवेत पुकार के साथ गुजरती रही थीं, मगर ऐसी विचित्र स्थिति इससे पहले कभी नही आई कि अर्थी गुजर

जाने के लगभग दो घटे बाद भी पडाव म इतनी भीड जुडी रहे और वह भी डिगरवा जैसे क्षुद्र भिखारी और डाम कहे जान वाले की अर्थी गुजरने पर।

सभी लोग अनुभव कर रहे थे कि लाटी के असामान्य किस्म के करुण विलाप ने ही डिगरुवा की मृत्यु को इतना महत्त्वपूर्ण बना दिया है कि एक मला-सा जुट गया मालूम पडता है। अन्यथा अर्थी गुजरने पर सिर्फ इतनी सी सूचना के बाद ही सारे लोग अपने अपने काम मे जुट जाते कि डिगरराम मर गया। और इस सूचना से लोगो को कोई कष्ट नही होता, बल्कि थोडी राहत ही अनुभव होती कि चलो एक हद दर्जे के झिगाली और पलीत भिखारी से पिण्ड छटा और दो चार लोगो को कुछ-कुछ दूसरे किस्म की भी खुशी हो सकती थी मगर डिगरुवा की मृत्यु से सम्भव हुई मुक्ति के सुख को उत्तमा लाटी ने एक वितृष्णा और खीझ मे बदल दिया था।

पति कसा भी गया बीता हो, उसके मरने पर दु ख स्वाभाविक है और कातर होकर रोना भी—मगर डिगरुवा जैसे पिंगाली और काना भिखारी की मृत्यु पर उत्तमा लाटी अपने गूगे गले से ही घण्टो तक इतना करुण और विकट विलाप करती रहे जितना पतिव्रता ठकुरानियां और बहूरानियां भी नही यह बात सभी को चुभ रही थी और लाटी का विलाप लोगो को अब एक कृत्रिम प्रदर्शन लगने लगा था।

अपने पतोली गांव से पडाव के इस चौराहे तक, ढाई मील उत्तमा लाटी अर्थी के पीछे-पीछे चीत्कार करती चली आई और यहा से श्मशान की सडक म पहले ही बिरादरो ने अर्थी नीचे उतार दी और बिरादरी के मुखिया ने लोगा को सुनाते हुए कहा था—यह दरिद्र लाटी राडी महाराज, साक्षात् सती सावित्तरी जसी मुर्दे के पीछे पड गई। कही चिता म कूद मरेगी, तो फिर पटवारी पेशकार हमारी पकड धकड शुरू करेंगे। अब या तो यह लाटी हमारा पीछा छोडे और या हम मुर्दे को कही नीचे खडड म फेंककर वापस चल जाए।

लाटी ने गांव बिरादरी के लोगा को आग लपलपाती सी आखो से देखा जरूर, लेकिन, शायद डिगरुवा की अर्थी को खडड म गिरा दिए जाने की आशका से, अर्थी स कुछ दूर ही थम गई और बाहें फलाकर सकेत कर दिया कि अब अर्थी का पीछा नही करेगी। मगर अर्थी के आग बढने के कुछ ही दर बाद, जो उसने बाहें फैला फैलाकर हथेलिया से अपना माथा और धरती पीटत हुए दुबारा एक दिगतव्यापी विलाप शुरू किया, तो बस, तब स थमी नही।

आँखो से आँसू और ओठो से लार बहते रहने से उसकी कुरती का ऊपरी हिस्सा भीग गया था और लार के साथ साथ उसके गूँगे गले तक पहुँचती हुई दृष्टियाँ कोम रही थी कि राड को विलाप तो बहुत सूझ रहा है, मगर गले का काला चरेवा भी अभी नही तोडा। सदैव शात प्रसन्न रहने वाली उत्तमा लाटी आज रेत मे तडफती मछली की सी प्राणातक तडफडाहट मे दिखाई देने लगी थी, तो सभी को उससे एक वितृष्णा-सी होने लगी। होटलवाले रतनसिंह ने तो यहा तक कह दिया— यारो, इतना विलाप करने वाली औरत जो मिल जाए, तो किस ससुर का मन नही होगा मरने को!'

बगल से बनारसी बुकसेलर बोल उठा था, 'अरे ठाकुर साहब, लाटी जसी जवान औरत का रुदन तो अर्थी पर लेटे मुर्दे को भी खडा कर दे।'

बनारसी बहुत धीरे धीरे ही बोला था, मगर फिर भी उसे लगा कि उसकी आवाज बहुत दूर-दूर तक गूज गई है। उसने अपनी फरफराती पुस्तको के पन्नो को दबाने के लिए एक दो पत्थर उठा लिए। उसे लगा कि इससे कही बहुत वजनदार पत्थर भी उसकी काँपती पसलियो के अन्दर उघडती बेचैनी का नही दक पाएँगे। उसे लगातार यह बात याद आती गई कि दो साल पहले भी लाटी बहुत जोर जोर से चीखी थी। तब, जब चावल देने के बहाने उसन लाटी को अपने कमरे मे बुला लिया और चावल लेने के लिए लाटी को एक कागज पकडा दिया था। बनारसी को आशा थी कि लाटी उस कागज म छपे चित्र के सकेतो को पहचानेगी, तो गँगी जिह्वा की असमर्थता को चीरकर, उसके चेहरे पर भी कुछ सकेत उभर अवश्य आएँगे, मगर लाटी पर कोई प्रतिक्रिया नही हुई और उसने कागज को पलटकर, चावल लेने के लिए फैला दिया था।

बनारसी की आसक्ति के प्रति अस्वीकृति जताने को लाटी न जो सकेत किया, उससे बनारसी कुढ गया था कि—रतन ठाकुर ठीक ही कहा करते हैं कि गूगो की जीभ उनके हाथो मे हुआ करती है।

उत्तमा लाटी के निषेध के प्रति अपना गुस्सा जताने के लिए उसन दरवाजा बन्द किया ही था कि लाटी, लगातार कई बार, इतने जोर-जोर से चीखी थी कि बनारसी ने घबराकर दरवाजा खोल दिया और उसके चावल फेंककर चले जाने के बाद, फिर दरवाजा बन्द किया था, तो लगातार तीन दिन तक कमरे से बाहर नही निकला। इस आशका मे कि बाहर निकलते ही लोग यह न पूछने लगें कि तुम्हारे कमरे के अन्दर लाटी क्यो चीख रही थी?

शुरू-शुरू मे उसे ऐसा लगता रहा कि लोगों की भीड बाहर खडी दरवाजा खटखटाने ही वाली है, लेकिन पडाव की प्रवृत्ति के विपरीत यह विचित्र बात हुई कि किसी न बाद मे भी यह जिक्र तक नही किया कि लाटो चीखी भी थी।

बनारसी यह भी सोचता रहा था कि शायद लाटी नहीं चीखी, खुद उसकी आत्मा ही चीखी होगी क्योकि लाटी बाद मे भी उसकी दुकान के पास बैठती और कभी-कभी नाचती भी रही थी। उसके प्रति किसी भी प्रकार के रोप की झलक उत्तमा लाटी म नही मिलती, मगर उस दिन के बाद लाटी को छेडने का साहस बनारसी कभी नही जुटा पाया। उसे लगता रहा, जिस प्रकार लाटी ने सचित्र कागज उलट दिया था, उसी तरह उसकी आत्मा को भी पलट सकती है। अपने अन्दर चीखती लाटी से बनारसी बहुत डर गया था।

तब से आज ही बनारसी ने लाटी पर छींटा उछाला और आज भी लगा कि उसने अपने आप पर ही कीचड उछाली है। औसत गोरी, खूबसूरत और जवान उत्तमा लाटी मे कुछ ऐसा था, जिससे उसका एक सम्मोहन सा बना रहता। पुजारी रामदत्त तो यहाँ तक कह देते कि—'काने, कलूटे और पलीत डिगरराम के साथ उत्तमा लाटी को देखने पर मुझे शिव पार्वती का जोडा याद आने लगता।'

दूसरे लोगो मे इतनी श्रद्धा या भावुकता नही थी, मगर बोलने के बहाने हाथो से मौन सकेत करने वाले रतन ठाकुर न भी अपनी हरकतें खुद ही बन्द कर दी थी और आग्रह करने पर, जब भी लाटी उनके आँगन मे 'फुफुली फफै फफै फै' की तान-जसी गुजाते हुए नाचने लगती, रतन ठाकुर भी ठीक एसे ताली बजाते, जैसे रामदत्त पुजारी कीर्तन के समय बजाते थे। लाटी की शब्दहीन तान की गूज कुछ ऐसी लगती, जसे कोई ताँबे की गडुवी से किसी पत्थर की मूर्ति पर बहुत ऊँचाई से जलधार दे रहा हो। उसके सौन्दय क प्रति वासना की अपेक्षा करुणा और आध्यात्मिकता ही उन क्षणो मे ज्यादा उमडती, जब वह अपनी आँखें मूँदकर नाचती ही चली जाती नाचती ही चली जाती।

उसके गल म 'गा-गो-गा गो' के सिवा और कोई नाद नही। जीभ को तलुए से सटाकर 'थत्ती-थत्तै-थत्ती थै' या 'फफुली फफ फफ फै' के सिवा और कोई शब्द वह उच्चार नहीं पाती, लेकिन उसके दरिद्रता में डूबे दिखाई पडने वाले जीवन मे जाने कहाँ ऐसा अद्भुत क्या था, जो उसे, जब वह उमग-तरग मे हो, एक अपूव अलौकिक दैवी सगीत के से सम्मोहन म कर देता था।

उसकी उम्र यही कोई छब्बीस-सत्ताईस के आस पास रही होगी। उसकी डिगरराम से शादी का इतिहास औसत से भी ज्यादा सामान्य था, लेकिन पुजारी रामदत्त के शब्दो मे पिछले कुछ वर्ष उसमे 'दैवी तत्व' के प्रकट होने के रहे। डिगरुवा को पहुँचाने और ले जाने को उसका आना शुरू हुआ। फिर धीरे-धीरे सुबह से सन्ध्या तक का साथ रहना भी। बाद मे तो कभी-कभी वह अकेली भी चली आती। लोग पूछते, तो इंगितो से बताती कि आज डिगरराम की तबीयत ठीक नही। धीरे धीरे वह भैसियाछाना पड़ाव का एक जरूरी अंग बन गई।

पहली बार उसका रूप प्रगट हुआ, जबकि बैसाखी की सैमदेव को जात्रा जा रही थी। ढोल दमामे और निशान लिये लोग हर वर्ष जात्रा पर निकलते। चौबटिया वाले पड़ाव पर की छाया मे कुछ देर विश्राम करते, खाना चबैना निबटाते और इस बीच लोक संगीत की नाना प्रकार की झाँकियाँ भी प्रस्तुत करते।

यह कोई तीन चार साल पहले की बात होगी, जबकि जात्रा वालो ने कोई देवी गीत प्रारम्भ किया ही था कि उत्तमी ने अपने रंगीन घाघरे के दोनो छोर हाथो मे ले लिये और जब तक मे लोग कुछ समझें, हँसें या छेड छाड करें, जाने कब वह वर्षा ऋतु का मोर होती चली गई। जैसे स्वप्न मे जात्रा का आभास मिला हो उसे, अपने शादी के जोडे मे आई थी वह। उसने आकाश से उतरी परी की तरह का नाचना शुरू किया और स्वयं की सुध-बुध भूलती, दूसरो की सुध बुध भुलाती चली गई। कुल दस पन्द्रह मिनटा तक नाची होगी वह, लेकिन उसका वह नाचना इतना अप्रत्याशित और अकल्पित था कि सारे लोग अचम्भित ही रह गये।

जात्रा मे के लोगो को भी जाने कब यही भ्रम हुआ कि लाटी में देवी आई है। उसके इर्द गिर्द ढोल दमामे बजाने वालो का घेरा पड गया। स्त्री-पुरुषो और बच्चो का मेला जुड गया और आरती की थाली घूमने लगी।

रामदत्त पुजारी जी को भी 'माता माता, माता माता !' करते, लाटी के नृत्य में प्रभा मण्डल के भृंग की तरह नाचते उस दिन ही पहली बार देखा गया था और आज तक उनका यह भ्रम टूटा नही है।

मेले ठेले उत्सवो मे भैंसियाछाना मे एक कौतुक जैसा जुडता और लाटी उसमे जब नाचती, सारे वातावरण पर छा जाती।

उसमे एक विचित्र कला थी। नाचते नाचते मे ही वह जैसे सारे उपस्थितो को पार्थिवो मे बदलती जाती और स्वयं उसके जैसे दिव्य पंख उगे हो।

सबके सामने सामने ही वह सबसे भिन्न हुई जाती। डिगरराम, देवी की लात खाया हुआ सा, एक तरफ बैठा तालियाँ बजाता रहता। लाटी की उत्सव-मयता मे वह नितात अकिंचन दिखाई पडता। लाटी और उसमे सचमुच कुछ भी मेल नही था। लेकिन आज वही डिगरराम विगत हो गया है लाटी का महाक्रन्दन जैसे सारी दिशाओ के बध तोड देना चाहता है। लाटी के इस ची त्कार मे सिर्फ एक भीषणता ही नही—अकिंचन डिगरराम को सारी सृष्टि से ज्यादा महत्त्व दे रहे होने की सी चुनौती भी है।

तब भी यही होता कि जहाँ लाटी डिगरराम के साथ आती और भीख माँगने उसके साथ बैठती—लोगो को यह रोजमर्रा का धधा लगता। क्योकि रोज वह नाचती नही थी। लाख आग्रह करने और पैसा का लालच देने पर भी। किन्ही पर्वों पर ही उसमे नृत्य जागता। मगर जब जब लाटी अकेले आती, लोग उसके प्रति सवेदनशील हो जाते। इस रहस्य को सिर्फ रामदत्त पुजारी ही जानते थे कि अकेले उन्मी लाटी को देखकर ही उन्हे स्त्री कामना अनुभव होती है।

अर्थी, अब तक मे, जाने कितनी दूर निकल चुकी होगी। हालाकि अर्थी ले जाते लोगो के पाँवो की धमक सामान्य से ज्यादा देर तक वातावरण म बनी रहती है। पहाड मे ओझल होते कहाँ देर। यहाँ तो प्रकृति अनन्त मुद्राओ मे हुई। पलक झपकते सडक नदी की तरह मुडी और बहा ले गई।

लाटी की बाढ अभी भी उतरी नही थी। बनारसी बुकसेलर का याद आया कि उस दिन भी लाटी डिगरराम के साथ ही आई थी, बनारसी को इस तृष्णा ने छा लिया था कि उत्तमा लाटी डिगरुवा काने के साथ नही, बल्कि उसके साथ ज्यादा शोभायमान लग सकती थी। मगर सिर्फ इस तृष्णा मे जाति गँवा बैठने की आशका भी कम नही थी और, शायद, उस दिन यह आशका ही उतनी जोर से चीख उठी थी।

लगातार चीखती चली जाती लाटी का, देखकर, आज बनारसी बुकसेलर को यही लग रहा था कि लाटी उस दिन भी चीखी अवश्य होगी। आज भी चीख रही है, मगर तब की और आज की चीखो मे एक अन्तर है। पहले लाटी उसे सिर्फ अपने ही भीतर चीखती महसूस होती थी, आज सबके अन्दर चीखती दिखाई पडती है। इतने सारे जो लोग विलाप करती लाटी के आस पास घिर आए हैं, जैसे ये सभी अपने ही अन्दर चीखते चीखते लाटी के पास खिचे चले आए हों और अब इसी प्रतीक्षा में हैं कि उत्तमा लाटी चीखना बन्द करे तो इन्हें भी छुटकारा मिले।

बनारसी सोच रहा था कि अपनी बेचैनी से मुक्ति पाने को औरो को भी चीखने से रोकना जरूरी है। लाटी को देखकर लगता है, जैसे वह सामूहिक आसक्ति और विरक्ति को अपने मे केन्द्रीभूत करने की अलौकिक शक्ति रखती है। सिर्फ इसीलिए, इतने सारे लोग उसे चुप कराने के लिए शोर सा मचा रहे हैं और किसी को नही सूझ रहा कि उपाय क्या है। अन्यथा इसी पडाव पर बहुत-से लोग मरे हैं और उनकी विधवाओ ने विलाप किया है, मगर किसी को चुप कराने के लिये ऐसा सामूहिक प्रयत्न तो कभी नही किया गया ?

एक अजब आलम है। छतो, बरामदो और आगना मे खडी औरतें, लाटी के आस-पास जुडो मर्दों की भीड। लाटी पर आवाजें कसी जा रही हैं, हाथो से तरह-तरह के सकेत किए जा रहे हैं। इतनी सारी आवाजो और सकेतो का विरोध सिर्फ लाटी के चीत्कार आर्त्तनाद की ध्वनि मात्र को लेकर नही, बल्कि उसमे निहित किसी अभेद्य अर्थ को लेकर ज्यादा आभासित होता है, लेकिन यह अर्थ है क्या ? आखिर ऐसा कौन-सा अद्भूत रहस्य छिपा है लाटी के इस अतर्वेधी विलाप मे, जो सबको समान रूप से जकडे है ?

उस दिन सिर्फ चार पाँच फुट भागने तक चीखी थी। आज ढाई मील तक चीखती आर्त्तनाद करती चली आई और अब भी वही क्रम है। इतने सारे लोगो की उत्तेजना और वितृष्णा का जैसे उत्तमा लाटी के लिए कोई मूल्य ही नही।

बनारसी बुकसेलर को लगा, लोगो के सामने, शायद अब सिर्फ दो ही रास्ते रह गए हैं—या तो लाटी के मुँह मे कपडा ठूँस दें, या अपने कानो को बन्द करते हुए, अपने-अपने ठिकाने लगें। बनारसी जानता है कि दोनो मे ■ पहला रास्ता ही ज्यादा कारगर हो सकता है, क्योंकि लाटी का चीत्कार उसके अग-अग से फूटा पड रहा है।

किताबो की दुकान के आगे चौडे पटरे पर फैलाई हुई सिनेमा-गीतो की पुस्तिकाओ के पन्ने और आर्ट पेपर पर छपी अभिनेत्रियो तथा देवताओ की तस्वीरें तेज हवा से फरफराने लगी, तो बनारसी बुकसेलर को लगा, यह तेज हवा भी जसे लाटी मे से ही प्रकट हो रही है। वह एकाएक, मंत्रविद्ध-सा लाटी की ओर बढ गया। लोग क्या अनुमान लगायेंगे, इसकी चिन्ता छोड, उसने तेजी से आगे बढकर, लाटी की विलाप मे ऊपर की ओर उठी

बाहों को नीचे झुका लिया और खींचते हुए सीधे अपनी दुकान के पास ले आया।

लोगों को देखकर आश्चर्य हुआ कि लाटी ने कोई विरोध नहीं किया और चुपचाप चौड़े तख्ते पर बैठ गई। बनारसी जरूर अब भी आशंकित था कि कहीं फिर चीत्कार न करने लगे। लाटी के बारे में सोचते सोचते औरों की उपस्थिति को भूल गया। वह चाहता था, लाटी को सांत्वना देकर शांत करे। उसने यह जानते हुए भी कि लाटी बहरी नहीं—अपने दोनों हाथों की उँगलियों को आपस में जोड़कर, पांच बार लाटी की ओर झुकाते हुए, डिगरराम की उम्र का बोध कराया। फिर एक उँगली से बाईं आँख मींचकर, शेष को कोढ़ियों की तरह सिकोड़कर उसकी कुरूपता और फिर, मुंह को बिचका बिचकाकर, उसकी दरिद्रता का चित्र खींचा। इसके बाद लाटी के आंसू पोंछ, हाथों से उसकी गीली कुरती का कालर ठीक करते हुए, काला चरेवा एक ही झटके में तोड़ दिया और चरेवा तोड़ने के साथ ही अपना मौन भी तोड़ बैठा—एकदम पलीत दरिद्दर और हरामी हो तो था वह। मर गया तो तुझे मुक्ति ही तो मिली। तुझ जैसी जवान छोकरी उस अधेड़ काने के लिए रो रो रोकर प्राण दे देगी अपने ?'

अचानक लोगों की उपस्थिति का ध्यान आते ही बनारसी को लगा कि जिस अवधि भर वह अपनी उंगलियों से बोलता रहा, लोगों की आँखें बराबर उसके चारों ओर बर्रों की तरह मंडराती रही हैं।

बनारसी को लगा, लाटी का काला चरेवा अपने हाथ से तोड़कर, जैसे उसने लाटी के अस्तित्व को अपने में समो लिया है। लोगों की दृष्टियाँ लाटी से हटकर, उसी पर केन्द्रित हो गई हैं और उनके हिलते हाथों की उंगलियाँ जीभों की तरह लपलपाती पूछ रही हैं—क्यों, बनारसी बुकसेलर ? उस दिन तुम्हारे कमरे में से लाटी के चीखने की आवाजें क्यों आ रही थीं ? और आज भी यह लगातार जोरों से चीखती लाटी तुम्हारे थामते ही एकदम गूंगी बनकर, दुकान के तख्ते पर क्यों बैठ गई है ?

क्या हुआ होगा ? लाटी को जब उसने दिलासा देना चाहा कि वह अपने को अनाथ नहीं समझे, तो उस क्षण में कहीं अवचेतन में कोई कांक्षा मुंह उघाड़े मौजूद रही होगी ?

क्या है कि सामान्य चित्रों से लेकर कलैंडरों तक में स्त्रियों की ही प्रमुखता है। यह विस्तार अभिनेत्रियों से लेकर देवियों तक गया है। कहीं

सब की कुछ ऐसी प्रतिच्छाया सी उतर गई अनुभव होती है अपने मे, जो आज इस लाटी के महाक्रदन मे प्रतिबिम्बित हो रेही है।

उसने लाटी को ध्यान से देखा। वह अब समाधि लगा चुकी भासित हो रही थी।

बनारसी बुकसेलर की ज्ञानेन्द्रिया ही नही, वल्कि कर्मेन्द्रियाँ भी जैसे एक दम सुन्न पड गई हो। उसे लगा कि अब वह अपनी बेचैनी और घबराहट को सिर्फ वैसी ही चीखो के द्वारा व्यक्त कर सकता है, जिनमे सिर्फ ध्वनि हो, शब्द न हो। जिनमे सिर्फ अर्थ हो। उस एक क्षण मे ही उसने अनुभव कर लिया कि लाटी को लोगो के बीच रुदन से मुक्ति दिलाने के बाद, वह स्वय उपस्थिति मे आ गया है। क्या लाटी इसी प्रतीक्षा मे थी कि कोई उसकी बाँहो को झकझोरकर नीचे झुका दे और उसके अनवरत विलाप को आकाश की ओर उठने से रोक ले?

बनारसी बुकसेलर यहाँ के लिये प्रवासी है। वह पहाड का मूल निवासी नही। वह एकाएक लाटी की बाधा मे घिर गया है। वह चाहता है कि या तो कोई उसे भी मुक्ति दिला दे और या उसकी रही सही चेतना को लाटी को बिठाने से बिखरी पुस्तिकाओ और तस्वीरो की तरह समेटकर, उसे कमरे मे ले जाकर वद कर दे।

यो देखो, तो यह लाटी ही इस समय मुक्तिदायिनी की-सी प्रशात मुद्रा में दिखाई पड रही है, लेकिन यह लाटी उसे क्या मुक्त करेगी, जो उस काने कलूटे डिगरराम की मृत्यु पर अनत लगते-से विलाप का ही कोई उत्तर नही दे पा रही?

लोगो का दबाव चारो ओर से बढता ही जा रहा है और प्रश्नवाचक सर्प जिह्वाएँ उसे डसने ही वाली हैं, यह सोचकर, बनारसी बुकसेलर की आत्मा काप उठी और उसका सारा आक्रोश, सारा भय सिर्फ लाटी के सामने ही फूल गया— 'अब सगमरमर की मूरत-जैसी खामोश क्यो बैठी है, ससुरी! बोल? अरे राड! कुछ तो बोल कि अपने खसम के मरने पर तू क्यो ढाई मील तक मुर्दे के पीछे चुडैल-जैसी चली आई और क्यो तूने नौटंकी-जैसी भीड इकटठी कर ली है यहाँ?'

आवेश मे बनारसी बुकसेलर अपने हाथो से लाटी को झकझोरता जा रहा था, जैसे उसके झकझोरने से लाटी के हाथो की उगलियाँ फूट पडेंगी और उनसे लोगो की प्रश्नवाचक आँखो के लिए कोई शब्दहीन—किन्तु इतना ही

अधपूर्ण उत्तर निकल आएगा। —मगर लाटी ने सिर्फ बगल में उलटी पड़ी बालकृष्ण की तस्वीर को सुलटा कर लिया और बनारसी को बालक कृष्ण की तस्वीर दिखाने के बाद, आँखों को श्मशान-भूमि की दिशा मे उठाया। और कुछ क्षण उधर ही देखती रही। इसके बाद उसने बालकृष्ण के चित्र को उलटा करके चित्र वाला भाग, अपार अनुराग के साथ, अपने अधखुले पेट पर लगा लिया। —और फिर चित्र को पेट पर से हटाकर, उसे गहरे प्रश्नवाचक ढग से हवा मे घुमाने के बाद, वह पहले से भी ज्यादा जोर से चीख उठी।

●

काला कौवा

गोपिया उसका भाई था। वह उसकी बहन।

सावली-साँवली उँगलियो के गोरे गोरे नाखूना से कुती गोपिया के सिर के बालो को ऐसे सुरसुराती, जैसे धान मिले चावल बीन रही हो। गोपिया के सिर के घने काले बालो की लच्छियो के बीच-बीच मे उजली रेखाएँ खीचते, कुती सोच रही थी पीठ-पीछे के भाई के सिर मे जू पड जायें तो शाप दीदी को लगता है।

काले बालो की जडो मे गोरी रेखायें होती हैं और उन गोरी रेखाओ के रेशे रेशे मे वास होता है, खुजयाली देवी का! गोपिया का सिर खुजाता है, तो चुलमुलाता कुती के पास आ जाता है। चारो तरफ सावधानी से देख कर एकात पाते ही पिल्लो की तरह कूँकता कुती के आँचल मे सिर टिका देता है। कुती ममता से मिठिया जाती है। उसके सिर को बायें घुटन पर ठीक से टिकाते हुए, बदरिया का सा ध्यान साधते हुए जू बीनती है। अगूठा के नाखूनो के सिरे मिलाकर, 'अँ' कहते हुए, ठुग मारती है, तो गोपिया थोडी ही देर बाद गोद म सिर रखे रखे ही निंदिया जाता है।

मल्ली बाखली की चदरा आमा कहा करती है, छोरमुल्या छौने और विधवा बहू के सिरे मे ज्यादा जू होती हैं। मल नक्षत्र ऐसा बाँधा हुआ कि माँ-बाप की छाया पहली पारी के दाँत फूटते-फूटते ही पीछे छूट गई और गोपिया छोरमुल्या हो गया। पहाड का सा सहारा पिता के साथ गया और ममता की घनी छाँव माँ के। लावारिसी की तपती धूप मे ठडी हवा का जैसा सहारा, बस, एक कुती दीदी का रह गया।

जिससे कौली-कौलो लोथ फूटी थी जो देह को सरसो के तेल मे सीझी हथेली लगाते मे भी गाँठ दुखने का जतन रखती थी, जो छाती मे भी काजल लगाकर, तब आँचल से मुँह ढाँपे दूध पिलाती थी कि कही किसी की

दीठ न लगे, वह माँ तो बिना दूध का स्वाद ठीक से छुड़ाय ही जाने कहाँ, किस लोक को चली गई। रह गई सिर पर छोटी जात की गोल मिर्ची जसी तेज तिखुली काकी, जो लाड दुलार के नाम पर उल्टे नटौरे बरसाती।

चदरा आमा कहा करती, जैसे तितपाती चबा करके बकरा सिर धुनता है ठीक ऐसे ही गोपिया की काकी लछुली के तीखे बचनो से कानो की जाली फटफटाने लगती है। लछुली की जगह तिखुली नाम चदरा आमा ने ही रखा ठहरा। इसमे क्या शक कि आगे या पीछे, आखिर तो आदमी के जसे कम, तसा ही नाम भी होने ही वाला ठहरा।

पूप की तूपार से गोखुर-जैसे चुपटोलो का पानी खाँकरो (बफ की सिल्लियो) म बदलने लग गया था, मगर लछुली काकी ने गोपिया को बिना घाम फूटे ही पानी भरने भेजना नही छोडा। आज कुती धान कूट रही थी। लछुली काकी ने कह दिया—'कुतू बिस्तरे मे पडे पडे देह गरमाने वाली लडकी सौरास की रोटी नही, सासू के सोटे खाती है, सोटे ! पूस की ठण्ड तो हाथ-पाँव चलाने से ही टलती। ले, ल्ले ! अरे, चार चोट मूसल ऊपर, चार चोट मूसल नीचे करा, देख फिर कि जोड-जोड से पसीना चूने लगता कि नही। जो काम चोर नही उसको कैसा पूस और कैसी ठण्ड। रोटी तो आदमी को हर मौसम मे जरूरी हुई और पूस-माघ मे तो दो खाने वाला, चार रोटी खाता।'

इधर सूप मे धान लिए, कुती ओखली तक पहुँची और उधर टीन कनस्तर उठाये गोपिया पौन मील दूर की मिहलचौर की बावडी स पानी भरने चला गया। मतलब कि उधर सर्दी मे किटकिटाता गोपिया चला गया और इधर मूसल ऊपर-नीचे लाते मे कुती को लग रहा, चोट ओखली नहीं कलेजे में प्रानो पर पड रही। धान के नहीं, व्यथा के छिलके आँखो के रास्ते कपोलो पर बिखर रहे। पीठ-पीछे के भाई गोपिया के टीम के चावल कलेजे की तली मे बैठ गये। हे राम !

अहा, यह राम का नाम भी क्या चीज हुआ, महराज ! जहाँ दुख व्यापा, नहीं, 'राम, हे राम !' निकल पडने वाला हुआ मुँह से। गोपिया के माथे पर आखिरी बार अपनी थरथराती हथेली फेरते समय माँ के मुख से भी 'हे राम, हे राम' ही तो निकला ठहरा और हसिनी कैलास पर्वत की तरफ उड गई ठहरी !

हसिनी उड गई मगर उसके टीस मे थरथराते पंखो से झडे मोतियो के दाने गोपिया छारमुस्या के माथे पर दुलदुलाते रह गये थे। आज कुती की

आँखो मे पूस की तुषार पर पाँव टिकाते हुए, मिहलचौर की बावडी की ओर जाते गोपिया की उदास सूरत धान से बाहर फूटे चावल के दाने जैसी अलग ही उभर रही, तो उसके मुँह से भी यही निकल रहा—हे राम ! कुती सोच रही, माँ की आँखो के उन आखिरी मोतियो मे 'हे राम, हे राम' का लेख नही, बल्कि शायद गोपिया छौने के भविष्य की चिंता का लेख था कि—'मैं तो जा रही, कुती ! यह तेरा पीठ-पीछे का भाई हुआ। तू ही इसे आधार देना। मुझ अभागिनी से छोरे ने जनम पाया, कुतू, पालन-पोषण करने वाली तू बनना।'

ओ, माँ ! कुती अभागिनी कैसे करे अपने गोपिया भाई का पालन-पोषण ? काका-काकी के आसरे दिन काटने कठिन हो रहे। खाने-पीने की चीजो तक अपने हाथ की पहुँच नही। दूध लगाती बेला, कुती गोपिया को साथ उठा ले जाती। थोडा-सा दूध पिला देती, तो एक सतोष मिलता, मगर एक दिन तिखुली काकी की दीठ पड गई, तो रोज दूध दुहते समय देली पर बैठने लगी कि 'अरे, दूध का स्वाद अकेले अपने पिठलगुवा को थोडे ही चखाती होगी ? अपने कठ मे भी तो उतारती होगी मेरी गाय-भैसो का मूत ! चोरी की खुराक लगी हुई ठहरी, तभी तो दिन और, रात और मुटा रही मुसटडी !'

ओ मा ! कुती सोचती, अकेले अपने माथे पर नटौरे होते, झेल लेती। गोपिया का दुख बर्फ के फूलो सा झरता आँखो के सामने आता, तो हिया कलपने लगता है। जिसने पूस माघ मे कपास के फूलो की तरह झरती बर्फ नही देखी, उसने कहाँ समझ पाना कि अभागो पर विपदा कैसे बरसती। पहाड ढँक जाते, आदमी, तो आदमी हुआ।

अपने बस मे सुख पहुँचाने का सामर्थ्य नही। दुःख जरूर और घना हो जाता है। भीतर कही दूर-दूर तक घाटियो का सा कोहरा छा जाता है और कुतुली को कुछ नही सूझता कि क्या करे।

कुती धान कूटती जा रही थी, मगर उसकी आँखें बेर-बेर मिहलचौर की बावडी की दिशा मे गोपिया की सूरत खोजने लगती। कुती सोच रही थी, पूस की खाँकर जमानेवाली तुषार पडी और गोपिया नगे पाँवो पानी भरने गया है। टीन के कनस्तर मे भी कुती के अभागे कपाल के जैसे छेद पडे हैं। बूँद-बूँद पानी रिस रहा होगा। गोपिया छोरा जाडे से थुरथुराता 'ओ माँ, ओ दिदी !' बिलबिलाता, कनिस्तर मे जगह-जगह लीसे से टल्ले लगाता

परेशान होता होगा। भगवान ने पीठ पीछे भाई दिया, तो ऐसी पलीत तकदीर न दी होती।

कुती सोच रही थी, पूस बीतने लगा। बीतते बीतते या ही माघ फागुन भी पर्वत-पार के पक्षियो-जैसे ओझल हो जाएगे। चत मे पियराई सरसो खेतो से विदा होती शुरू होगी और इस साल के वैशाख के लगना मे शायद अभागिनी कुती भी।

तराई भाबर से देसी लोग आए थे। पडोस के गुमानीसिंह के मॅझली उतमी को सात सौ मे टीका लगा गए, तो लछुली ने अपने चतुरसिंह के कानो मे भी एक मतर-जैसा फूँक दिया—'क्यो हो, परचेत-जैसे क्या पडे हुए हो? मुहूर्त घर तक खुद ही पहुँचा हुआ है। गुमानी सौरज्यू की घरवाली कह रही थी कि देसी लोगो को एक दो लडकिया की जरूरत और। उनकी उतमी को तो टीका लग ही गया। एक ताँबे की कलशी-जैसी कुन्तू हमारे घर मे भी पडी हुई। पहाड मे ब्याहोगे, तो चार भाँडे गाँठ के ही लगाने पडेंगे। देसियो को दे दोगे, तो वे आप खर्च लगाकर डोली उठा ले जायेंगे। सात आठ सौ की चोखी रकम ऊपर से मिलेगी सो अलग। घर से ऋण की पोटली खिसकेगी, लछमी मैया आयेगी। सात सौ मे तो तीन असील भसे आयेंगी। शहर मे दूध लगा दोगे हलवाइया के यहाँ, तो घर गृहस्थी को कुछ नून तेल गुड का आसरा हो जाएगा।'

चतुरसिंह के लिए तो लछुली ही साक्षात् लछमी उसके बचन कैसे टालता। गुमानीसिंह के माध्यम से बात आगे बढी, तो आठ सौ म कुती का टीका भी हो गया। तराई भाबर के अनेक देसियो को विधुर हो जाने पर अपनी जात बिरादरी या रिश्तेदारी म से लडकी बडी कठिनाई से ही मिलती और इधर पहाड के कुछ गाँवो म हजार पाँच सौ की रकम पर बिना वर देखे ही बेटी को विदाकर देने वाले कई मिल जाते। जरूरतमद दुहाजू यही सोचते कि अरे, ससुरा एक खेत चने और एक खेत गन्ने की फसल ही तो गई।

कुती जानती थी कन्या पराये घर की थाती होती है। वह तो वर की अँगूठी हुई। चाह जिस अँगुली मे डाल दे, उसी मे अटक कर रहना पडता। गाँव से कई लडकियाँ चली गइ थी। आते बशाख के लगनो मे उतमी के साथ कुती को भी विदा होना होगा और आज कुती यही सोच-सोचकर व्यथा से बिलबिला रही थी कि गोपिया छोरे की उसके जाने के बाद न जाने क्या गत होगी। ढग के टुकडे खिलाने का सुख नही दे सकती कुती, मगर चार मीठे बोल बोलकर, मेहनत के कामो मे हाथ बँटाकर ममता का सुख तो देती

ही है। फटे-पुराने कपडे धोकर उजले कर देती है। सिर मे जूं नहीं पड़न देती। जब खेत से थका आता है गोपिया, तो आँचले से लगाकर, असीस और ममता से भरी हथेलियो से उसकी देह पोछ-पलास देती है। गोपिया सुख की नींद सो जाता है।

कुंती बैसाख मे विदा दी जाएगी।

ओखली से निबटी कुंती, तो वन घास काटने चली गई। घाम नही फूटा, तब गई थी। एक बेर दिन मे लकडी काटकर पहुँचा गई। साँझ की बेला, दीपक की ज्योति के साथ घर लौटी। दिन भर गोपिया की सूरत बरफ की डली-जैसी आँखो मे जमी रही। बस, अब आधी रात का ही आसरा था।

खेत जोतते मे हल का जुवा टसक गया, तो गोपिया को आज फिर लछुली काकी के नटोरे पड रहे थे—'इतना बडा ढीट हो गया, बैलो को होट होट' करना नही आया। मार दिया होगा अजानचक मे सोटा, मरोड दी होगी मगनुवा की पछ—मार दी होगी उसने, हचैंक[1] चार फचैंक[2] इस भी धरो, तो औकात पर आ जायेगा।'

गास टुकडा पेट मे उतारकर, भैसो के गोठ की बगल की छोटी सी कोठरी मे कुंती के पास पहुँचा, तो उसने आँचल से लगा लिया और आखें ऐसी चू पडी, जैसे घुइयाँ के पौधे की नाल काट देने पर, उसके अदर भरा जल निथरने लगता है—बूद-बूद बूद-बूंद!

गूंगी कुंती बूद-बूद झरती, गोपिया का सिर अँगुलियो की पोरो से सुर-सुराती रही कि सहसा, कुन्ती की अभ्यस्त उँगलियो को गोपिया के सिर की तलहटी मे किसी जू के चिपके होने की सी अनुभूति हुई। थोडी देर हथपसार लगाकर ही, कुंती जू को ऊपर खीच ले आई और उलाहना देती बोली—'क्यों, गापू, यह जू किसके सिर से सरा लाया, रे?'

गोपिया मुँह छिपाये-छिपाये ही बोला—'दिदी' छोरमुल्या की मुडी म ता बिना सरे सराये ही जू पड जाने वाले ठहरे? छोरमुल्या के सिर की जू उसकी लावारिसी की कथा को उसके ही सिर पर खून की स्याही से लिख देती, एसा ही कुछ तो सयाने लोग बताने वाले हुए, दिदी!

दिदी का मुँह लगा ठहरा गोपिया। तरग मे आकर गाना शुरू कर दिया—

---

१ झापड

'अ—आ—बची का, गोपिया साले यहाँ था !
ई ई, कुतुलि दी—गोपिया को प्यारी दी।'

कुतुली ने जूँ को नाखूनों के बीच रखकर, 'अँ' चिल्लाते हुए, देवग्राम पहुँचाने के बाद, उसके सिर पर एक चपत धरते हुए कहा—'उपपाठी कहा का,' तो गोपिया झट दार्शनिकों के से लहजे में चालू हो गया—'यह एक जूँ तो संदेशा देने को आई ठहरी कि गोपिया रे, बैशाख के बाद तेरे सिर पर से दिदी की छाया छूट जानी। तब तो मेरा तो कुनबा बसेगा, यार! "और दीदी, फिर कभी तू यहाँ लौटेगी, तो मेरे सिर से जूँ अपने आप ही झड़ कर तेरी हथेली तक पहुँच जायेंगे और दिदी '

कुती कहने को हुई—चुप छोरे! नहीं भुगतने पायेगा तू अपनी कुती दिदी को। नहीं चखन पाये आते बैसाख की नयी फसल के गेहूँ, तेरी कुती दी। रह जाय, तेरी कुतुली दिदी की अगुली नदी के किनारे के पाथरा पर! न जाय, अगले बरस के सावन की हरियाली तेरी कुतुली के सिर। न भुगते अपनी पूरी उमर, तेरी कुतुली दीदी! लग जाएँ भाबर के काले घाम तेरी

जाने कितनी पहाड़ी गालियाँ एक साथ बरसने को होती हैं और कुतुली को यही टीस चुभ जाती है कि—चीख चीखकर कहने को मन होता है। हे राम! इन छोकरों को कितनी अकल दे देता तू। मुछहार नहीं फूटी ठीक से छोरे को, मगर वचन ऐसे बोलता, कलेजा कसमसा जाता। ओ माँ, तुमसे पहले मेरी पलकें मुंद गई होती, तो मोतियों के आकार के तेरे आँसू तो न देखती। अब तेरी अमानत को पीठ का आधार कैसे दूँ जबकि अपनी ही लोथ आठ सौ में बिक चुकी?' मगर कह कुछ नहीं पाई। गला नौले में डुबोये ताम्रघट-सा ऊपर तक भर आया और वह फूट फूटकर रो पड़ी।

'ओ दिदी! कुती को व्याकुल देख गोपिया परेशान हो उठा।

'मेरे गोपू! मेरे भइया!' कुती ने उसे और गहरे डुबो लिया अपने में। थोड़ी देर खेत कटे का सा सन्नाटा छाया रहा दोनों के बीच, आखिर गोपिया ही बोला—'बैशाख बीतते ही मैं भी परदेश चला जाऊँगा, दिदी! तेरी तराई भाबर से आगे, दिल्ली शहर पड़ता। सुना, वहाँ पहाड़ी छोकरों को भाँडे बरतन घिसने की नौकरी मिल जाती। मैं वहीं चला जाऊँगा, दिदी!'

हे राम, तूने पुरुष जाति को इतनी अकल क्या दे दी? जोगियों के छल्लेदार चिमटे-जैसे वचनों से कलेजे के चारों कोने कोने दबा देता गोपिया। हिया बिलबिला उठता है।

'गोपू!

'हाँ, दिदी !'

'मेरे साथ तराई भावर को चलेगा रे ? मगर वहाँ तो घाम पड़ते हैं। तुझे घाम लग जायेंगे।'

'दिदी, तेरी छाया रहेगी, तो घाम हर्गिज नही लगेंगे।'

आते-आते बैसाख आ गया। गेहूँ की फसल नाक की सोननथुली-जैसी पियरा उठी। पर्वत, घाटियां, घर और आँगनो मे बैसाख के लगनो की छाया गहरी होती चली गई। ठौर-ठौर मंगल बाजो का नाद गूँजने लगा। कुंवारी पार्वतियो की लम्बी नाक के आस-पास सोननथुली के फूल फूलने लगे। उनकी साँस-साँस ससुराल जाने के उल्लास और मायका छोड़ने के मोह मे कसमसाने लग गई। दिगौलाली

दिगौला—कुंती के नाक की सोनफुल्ली भी फूली—जैसी फूल उठी। हे राम, और छोरियो के नाक की सोननथुली फूलती, तो लाज शरम की मिठास से गदराकर सारी देह पियरा उठती। एक अभागिनी कुंती की नाक की फुल्ली फूली है, तो हिया दरक गया, आँखो की पुतलियाँ पनैली हो गई हैं। दुख मोतीदानो का आकार लेने लगा—मैं तो तराई भावर को विदा हो जाऊँगी माँ, गोपिया के आँसू कौन पोछेगा ?

देस से उतमी के ससुराल वालो के साथ ही कुंती की ससुरालवाले भी आ गये थे। एक दिन बीच मे था। रस्म पूरी होनी थी। आज सोम था, परसों बुध को विदाई हो जानी थी। चुकावे की रकम लछुली की अंटी मे पहले ही आ चुकी थी।

एकाएक कुंती की आँखो की पुतलियो मे एक उजली किरन जैसी झिर मिरा उठी। गोठ के कोने से निकलकर, सीधे चाचा चतुरसिंह के पास गई और दोनो पांव पकड लिये। चतुरसिंह पहले तो सकपकाया, फिर सिर पर हाथ रखते बोला—'कुछ कहना चाहती है, कुंती ?'

कुंती गहरे आग्रह मे बोली—'काका, बिना बोले मेरा दुख घटने वाला नही। तुम्हारी मुट्ठी की चीज हूँ, जिसे सौंप दोगे, उसी के साथ जाना होगा, मगर मेरा गोपू भी मेरे साथ ही रहेगा। देसवालो से पूछ लीजिए कि मेरी बात निभायेंगे या नही। नही तो मैं परदेश को हर्गिज विदा नही होऊँगी, परलोक को विदा भले ही हो जाऊँ।'

इतना कहकर, कुंती ने अपना सिर चतुरसिंह के पैरो पर रख दिया और गाब फटी बदली सी निथरने लगी।

चतुरसिंह चिहुँकता बोला—'गोपिया को तेरे साथ लगा देंगे, तो यहाँ खेती बाड़ी का काम कौन सँभालेगा ?'

लछुली आड़ में पड़ी सुन रही थी। फुसफुसाती बोली—'यहाँ आओ हो।'

चतुरसिंह पास पहुँचा, तो बोली—'बौरा गये हो क्या ? जाने दो गोपिया को इसी टकुली के साथ। अरे मूर्खो ! आज गोपिया नादान है, सब ठीक है। कल को सयाना हो जाएगा, बाल-बाल अपने हिस्से की जमीन जायदाद रखवा लेगा। तुमको तो आजकल के कानून-कायदों का कुछ पता नहीं। जाने दो बवाल कटेगा !'

कहने को वह यह भी कह जाती कि तराई भाबर के धाम लगेंगे, तो फिर वहाँ से यहाँ क्या लौटेगा, मगर पी गई। संतुलन साधती सी बोली—'कल को परमेश्वर दाहिना हो गया, तो निश्चिंत होकर तुम्हारे बाल बच्चे ही पूरी जमीन जोतेंगे।'

कुती के भावी मालिक मोहकम सिंह के कानों तक बात पहुँचायी गई, तो साथ के लोगों से बोला—'अरे, वह दो उस छोरी से हम तराई के देशी लोग यहाँ के पहाड़ियों—जैसे दरिद्दर नहीं। जब तक पड़ा रहेगा हमारे घोरे, टाँग पसारे खावेगा, सुसरा !'

चतुरसिंह कुछ कसमसा रहा था, मगर लछुली ने अचूक मंतर फेर दिया—'तो टिका के रखो अपनी छाती से पराये पूत को। अभी कुती अड़ जायेगी, गलफाँसी लगा लेगी, तब देखगी,तुम्हारी हेकड़ी को मैं तो। आठ सौ की चोखी रकम अंटी में आयी-आयी खिसकेगी, और ऊपर से पुलिस के हवाले होना पड़ेगा, तब जानोगे लला ! तीस में आयी कुतुली जाने क्या कर बैठे।

आखिर चित्त मारकर, चतुरसिंह ने भी सिर हिला दिया—'कुती लली, परदेश जाती बिटिया है तू। तेरी बात न मानने से पाप ही लगेगा। तेरी इच्छा यही हुई, तो जा—गोपिया को तू अपने ही साथ ले जाना।'

कुती को तब एकाएक लगा कि हे राम, आज अचानक ही उसकी नाक की सोनफुल्ली भी फूल गई ! बैशाखी पूनों का चाँद रामटेकड़ी के पथरीले टीले पर या कि कुंजताल की हवा से हिलती परत पर फूला करता है और गहरे हरे रंग के पत्तों के बीच की सोनबरन प्यूली ?

बिदा होने लगी, तो चदरा आमा मुख मलासने आ पहुँची थी—'क्या कुतू, सुना है, तू गोपिया को साथ ले जा रही ?'

'हाँ, आमा !' मुकुट-झालर उठाकर, कुती ने चदरा आमा के पाँव छुए थे,

चदरा आमा बोली ,थी—'परदेश जाती बहन का भाई तो पहाड का काला कौवा होता, नातिनी ! परदेश की मिट्टी तक पहुँचकर फिर अपनी थान मे लौट आता। पहाड का यह पछी देश के घामो मे नही टिकता लली।'

—हे राम, चदरा आमा का सिर चाँदी के चँवर-जैसा फूला हुआ है तो सत्त धरम की तपस्या से ही फूला हुआ ठहरा। आँवले के स्वाद और पितरो की बातो का सत्त हमेशा बाद मे ही मुख सामने आता।

कलेजे से लगाकर रखूगी, ऐसा मोह-लोभ लेकर कुती गोपिया को अपने साथ लाई थी। यहाँ तराई भाबर की तपती दुपहरियो मे लम्बे चौडे खेत जोतते गोपिया का गोरा मुख झुलस गया।

मायके मे और दु ख थे मगर एक सुख साथ का जरूर था, गोपिया थका हारा रहता, तो आँचल से सिर टिका देता। ममता की घनी छाया माथे पर झूल जाती, लेकिन यहाँ तो माथे का पसीना पोछने मे ही, सास परमेश्वरी उतार जैसे देती है—'अरे, मेरी दया ! इन पहाडन ससुरिया को कुछ लाज-शरम तो होती ही ना ! चोटटी ले मेर यार पतुरिया की तरह तो मुँह उघाडे चलती। जवान जवान भाइयो की देह से लगते भी तो इन बेशरमा को कसक ही ना लगती। अरे कोई अब दूध पीता बच्चा तो नही ना, गोपुवा ! कटडे से कम नहीं ना।'

मजाक मे ही कहा होगा, लेकिन एक दिन या ही मोहकमसिंह ने भी कह दिया—'भाई ही भला लगता, तो इसी के बैठ जा।'

हे राम, पुरुष जाति का चित्त इतना ,पातकी क्यो बनाया होगा तूने ? काना मे पाप के वचन पडते हैं, तो आँखो से अगार-जैसे झरने लगते।

उतमी जेठ मे ही पहाड से लौट आई थी। पहले तो कुती का मन नही था काका-काकी के यहाँ लौटने को उतावला, मगर जेठ की लू मे झुलसे गोपिया का मुह देखते-देखते हिया फटने लग गया, तो सासू से बोली—'माता जी, कुछ दिन पहाड हो आती। भाई को भी पहुँचाना था।'

'क्या, तू तो पहाड सैर सपाटे को जावेगी और मैं यहाँ ससुरा चूल्हा फूकती रहूँ ? चोखी बारा सौ की रकम इसीलिए लगाई क्या मेरे लल्ले ने ? भाई तेरा जाता, तो जाने दे सुसरे को अकेले, काई तेरी छाती से चिपटा थोडे ही है, जो अलग ही नही होवेगा, ससुरा।'

और आज चदरा आमा की कही बात सामने आ गई। गोपिया

दिशा न खुले ही घर से चला गया था, मोटे मोटे अक्षरों मे लिखी एक पुर्जी छोड़ता हुआ।

मोहकम से तो डरती थी, मगर छोटा देवर जरा भला था, उसी से पढ़वा ली पुर्जी कुंती ने।

लिखा था—दिदी, अपना दुःख तो झेल लेता, तेरी आँखों का पानी ज्यादा गलाता। मुख सामने रहूँगा, तो तू तड़फ तड़फ मर जायेगी। एक माँ तो छोड़कर चली गई, दूसरी का खुद छोड़ना पड़ रहा। सब अभागे माथे का लेख ठहरा, दिदी! तू मुझे बिसर जाना। सोच लेना, पहाड़ का एक पछी आया, उड़कर चला गया। अलमोड़ा लौटकर क्या करूँगा अब ? दिल्ली जाने का इरादा करता हूँ। सुना वहाँ पहाड़ी छोकरों को घरेलू नौकरी मिल जाती। कभी दिन फिरे तुझे भेंटने लायक हो सका तो तेरी देली मत्था टेकने आऊँगा जरूर। उसी दिन की बाट देखना और अपनी आँखों के आँसू पाछ लेना। —तेरा अभागा भाई गोपिया।

पहाड़ का काला कौवा उड़ गया और अब उसका टूटा पख—यह कागज का पुर्जा कुंती के हथेली पर पड़ा रह गया है। और पड़ी होगी कहीं गोपिया के सिर पर से निकली एक काली जू भी, जिसे माथे पर से पसीना पोछते-पोछते ही परसों दुपहरी को बीन लिया कुंती ने, तो अपने सिर के बालों मे छिपा लिया। वह जू ही आवाज जैसी देती जान पड़ती है—भाई आँचल से छूट गया है अभागिनी! उसकी जूँ को माथे मे छुपाकर सोना।

कुंती अपनी आकुलता मे यही पुकारने को होती है कि—हे राम, अब कभी सिर मे कंघी लगाने की ललक मत उपजाना मन मे। एक सहारा रह गया याद का। जब जब वह जूँ माथे के बालों को सुरसुरायेगी, आँखों मे गोपिया की सूरत मूरत भी उतर आयेगी जरूर!

एक पाव कटी बदली निथरती है। एक कपाल फूटी पहाड़न कुंती बूँद बूँद ताँबे की कलशी सी छीजती है। जीवन का एक पख काले कौवे की भाँति उड़ता अंतर्धान हो गया और उसका उजला पख हथेली पर थरथराता रह गया है—तेरा अभागा भाई, गोपिया

● ●

पुरखा

इस वक्त पिरिमा रसोईघर से लगी बैठी थी। जगल से लौटी गाय और महतारी, दोनो की गति एक होने वाली हुई। जैसी आकुलता बछड़े या बछिया, इससे कम बेटे या बेटी मे कहाँ। मुसी अमत—जैसा खोसने मे जुटी थी, इस लिये थोकदार की दुबारा पुकार सुनी, तो छोटी बहू पिरिमा वही से बडबडा उठी— ससुरजी यह तो देखेंगे नही कि अभी अभी घास-पात से लौटी हूँ, कमर की दराती निकालकर रखने को भी टैम नही मिला। दिन भर बच्ची भूख से घुलमुलाती रहती। जगल से लौटी नही कि छाती से बानर की तरह चिपक जाती। अपनी ही सोच है, परे कैसे फेंक दू? ससुरजी तो घर मे पडे रहते। फिर भी, जरा सा सबर नही। नही लायी, तमाखू भर के? हुकुम दे दिया! बहू की बेटी गयी खड्ड मे! चार घूट दूध कभी चैन से नही पी पाती!'

पिरिमा को पता नही चला कि थोकदार तमाखू की तलब मे खुद ही रसोई-घर चले आए हैं। वह बच्ची का दूध पिलाती, पडास की चन्द्रभागा से बातें कर रही थी, जो दूर के रिश्ते से उसकी जेठानी लगती थी।

सवेरे ही वह घास काटने चली गई थी। गोठ मे दुधार भैंसें हैं। हरी घास की बान ढली हैं। आगे हरी घास न हो, ता थन को हाथ न लगाने दें। कातिक लग गया, खेतो मे हरी घास रही नही। दूर, बन जाना पडता है। नदी, घाटी और उपत्यकाओ की पनैली धरती मे ही बारहो महीने हरी घास पनपती है।

कुछ देर पहले की बात है कि हरी घास का गटठर सिर पर लिये पिरिमा लौटी थी। आँगन म पाँव धरा ही था कि भस के सीगो मे तेल लगाते थोकदार ने वही से आवाज़ दी—जरा एक चिलम तमाखू दे देना।

पिरिमा गट्ठर सिर से उतार, अन्दर पहुँची कि छोटी बच्ची च्याँ म्याँ

करने लगी। घास काटते मे हाथ की दराती छणाक् छणाक् बजती है तो पिरिमा की छातियो मे दूध उतर आता है—मुसी याद कर रही होगी! दराती बजने लगी! कई बार सयोग से ऐसा भी हो जाता है कि इधर अपनी मुसी बिटिया की याद मे सिर ऊपर उठाया और उधर ऊपर चीड की डाल पर कोई वानरी बैठी मिलती है, बच्चे को गोद में चिपकाये। वानरी और उसके बच्चे को उस अद्भुत सी मुद्रा मे देखते ही पिरिमा का हिया पानी म डुबायी गागर की तरह बोलन लगता है।

भागा यो चली आई थी, जरा पिरिमा से पूछ आये कि बन की उपत्य-काओ मे अबके घास कैसी और कितनी है। वह मुह खोलने को थी कि थोक दार की पुकार आयी—नही लायी, बहू तमाखू भर के ?

पिरिमा एक तो बन की थकी, दूसरे बेटी छाती से चिपकी। लगी भागा से अपनी लगी भीगी कहने।

आनद थोकदार आगे बढते बढते ठिठक गए। पिरिमा की जो बातें कानों मे पड गई थी, उनका सारा वजन जैसे पांवो पर आ पडा है।

पिरिमा कह रह थी—'ससुरजी की यह बात बहुत बुरी। हाथ सारने को कोई न होगा, तो कुए से पानी भी खुद भर लायें, लेकिन जरा किसी को देखा नही कि चिलम पवत हो जाती है दूर से ही हुकम जैसा ठोक देंगे—लाना बहू, तमाखू भर के!'

सच कहो, थोकदार मे यह बात तो है। श्रम से कभी अलसाते हो ऐसी बात नही। साठ-बासठ की उमर उन जैसे पुरानी हड्डियो और मजबूत काठी वालो के लिए क्या बहुत होती है कि हाथ-गोड अलसायें। सुबह मुह-अँधेरे उठना और दिया जले तक इधर उधर के कामो मे लगे रहना। कभी भसों की सेवा, कभी बकरिया की सँभाल। चिलम पीते मे भी ध्यान रखना कि एक एक गिटटी तमाखू की खार हरेक बकरी को पहुच जाय। बकरी मुटाती है, नून खार से और बैल मुटाते है सानी से ।

किसान का धरम-करम तो बैलो और खेतो से है। सो, थोकदार जो छास पानी ज्यादा पीते हैं तो पेट भी साफ रहता है और बैलो के लिए ढोके मे पानी भी पहुँच जाता है। तमाखू ज्यादा पीते हैं कि चार फूक की बात है (साथे की चिलम) चल जाती है। चार दु ख-सुख की बातें हो जाती हैं। वक्त कट जाता है। खार बकरियो के हिस्से लग जाती है। गोठ क जानवरों के अलावा थोकदार घर-नजदीक की साग-पात की क्यारियाँ भी सँभालते हैं। गोडन पतियाने म भी किसी से पीछे नहीं रहते। नाती धनुवा से पानी मँगवा

लेते हैं। हर मौसम मे साग पात की इफरात रहती है। घर-आगे की हरियाली है, आँखो को सुख अलग देती है।

इतना-कुछ करते हैं थोकदार, तो उनके अकेले प्राण का निर्वाह क्या मुश्किल है ? कुटुम्ब के शिर छत्र है, सो उन्ही को चैन नही पडता, बिना चारो ओर का किये। नही तो, छोटा बेटा खीमसिंह बडा दिलदार और माननेवाला है। कहता है—'बाबू, अब आपको काम धाम की चिन्ता क्यो पडी रहती ? दो बहुए हैं, मैं हूँ, चनुवा है आपको अब आराम करना चाहिए।'

बेटो की क्या है, उन्ह कहना आसान ठहरा, क्योकि जगत से पाला ही कितना पडा ठहरा। कहने पर थोकदार ने चार दिन आराम करके भी देख लिया। चार दिन बीतते लाई पालक को पीले पात आने लगे। चनुवा बकरा पहली बार पडौस के रतनसिंह के बकरे कलुवा से 'ठेप ठेप' मे मार खा आया। काली चिकनी भैंसें भूरी दिखने लगी तेल बिना।

अरे, परिवार तो होने को देवदार के वृक्ष की तरह है। सात सात बहुएँ, छै-छै बेटे। दो बीसी सब पोते-नातियो की गिनती, पर कलयुग मे कही कुटुम्ब एक रहता है ? सब भाई न्यारे हो गए। थोकदार ने बहुत मनाया कि कुटुम्ब का एक हो के रहना ही ठीक है। दुश्मनो को आँख उठाने की हिम्मत नहीं होती। घर-बिरादरी मे मान प्रतिष्ठा रहती। एक रहोगे तो कोई उँगुली नही उठायेगा, छितरा गये, तो लाठी तानते देर नही लगायेंगे लोग, पर कौन किसकी सुनता है, आज के जमाने मे !

छोटे छोटे होते तो थोकदार कान से पकडकर, एक ठौर बिठा देते। पडत भेला पर चार सोटे, तो अपने आप रास्ते पर आ जाते। यहाँ तो हर कोई बाँसभर का है, हाथ उठे तो कैसे ?

सात भाइयो मे एक सन् चौदा की जरमनी की लडाई मे फौद हो गया। बाक़ी छहो ने अपनी-अपनी औरत का हाथ पकडा और एक तरफ़ हो गये। थोकदार ने कोशिशें की, इसको-उसको हाथ जोडे, पर दही हो तो बिलोने से नौनी आती है, फटे दूध मे लाख बार मथानी फिराओ, निकलना क्या है ?

थोकदार चुप करके बैठ गए। ढलती के दिन काटने थे। सबसे छोटे बेटे खीमसिंह का आधार ले लिया। दो गास अन्न, चार फूँक तमाखू की गरज। बेटा खानदानी निकला, निभती रही।

खीमसिंह के साथ रहते भी, थोकदार अपने और बेटा के यहाँ यदा-कदा चले जाते। एकदम अलग न बहुएँ थी, न बेटे। जहाँ पहुँचते, आव भगत होन

लगती। आसन बिछता। चिलम तैयार होती। दूध का बड़ा गिलास ढूंढ़ा जाता। नाती-पोते 'बाबा-बाबा' करने लगते।

थोकदार न यही सोचकर फटी को सी लिया कि अलग-अलग दिशा-द्वार हो गए तो क्या हुआ, उनके लिए कहीं किसी के मन म भेद नहीं।

खमीरा तमाखू के धुएं की जलेबियाँ बनाते हुए थोकदार सोचते रहे कि वे एक वृक्ष हैं, जिसमे कई शाखें फूटी हुई हैं। लेकिन एक दिन यह भरम टूट गया।

थोकदार ने बड़े करमसिंह के बेटे सदुआ स कहा—'बबुआ, जरा एक फूंक तमाखू भर के ले आ तो!'

सदुआ ने मुह पर झापड़-जैसा मार दिया—'जिनके यहाँ रहते हो, उनके हाथो मे केले थमे हैं क्या?'

तब तक मे खीमसिंह की घरवाली के पत्थर टूट के दो नहीं हुए थ और करमसिंह की विधवा भी उसी के घर बस गयी थी। सदुआ उसी का बेटा था। कहने को तो बिलकुल हुए थोकदार कि 'आखिर तू बेटा किस नस्ल का है।' लेकिन इसी ध्यान म चुप लगा गये कि थप्पड़ आखिर अपने ही मुह पर पड़ता है।

थोड़े ही दिनो मे थोकदार के कानो म और भी वचन पड़े। मंझले की घरवाली किसी से कह रही थी—'अरे, ससुर जी की बात क्या कहती हो? एक खीमसिंह को पकड़ के बैठ गये हैं, जैसे और किसी दूसरे के हो! जब वो ही अपना हाड मास अलग करके बैठ गये हैं, तो हम क्या रखें किसी से लाग-लपेट? आते हैं तो लोक लाज रखनी पड़ती है। नहीं तो मेरा भरे अँगूठा किसी के लिए चिलम! रात दिन जिनकी चाकरी म लगे रहते हैं, उनके हाथो को झड़आ रोग तो नहीं गया। छोटी को बेटी हुई है, तो 'हो भाऊ, हो पोथी' करते मुह नहीं थकता। मेरे बालका को कभी एक मीठी बात नहीं!'

ये घाव अभी भरे भी न थे कि आँगन मे से तमाखू की खार की गिट्टियाँ ले जाते समय, तीसरे बेटे पानसिंह ने टोक दिया—'बाबू खीमसिंह के ही नहीं, हमारे गोठ म भी चार बकरियाँ हैं!'

थोकदार की मुट्ठियाँ ऐसे खुल गइ, जैसे बिच्छू न डक मार दिया हो। खार की गिट्टियो के साथ चार आँसू भी आँखो स टपक पड़े आँगन के पथरौटो पर। फिर थोकदार ने सोच लिया कि सब साले कठुए है। खीमसिंह से राग-द्वेष रखते हैं। यह नहीं सोचते कि बिमुवा छोटा है, उसका दरद होना

चाहिए। लेकिन यहाँ तो सभी पत्थर हैं। सो, सबरा ही धोखा छोड़ दिया। सोच लिया थोकदारन एक बेटे को ही जनम देकर चली गई।

थोकदारन की याद जब कभी आती है, थाकदार के कलेजे मे कुछ गडने-सा लगता है। थोकदारन के रहते तो यह था कि चोट थोकदार को लगी, आँसू थोकदारन की आँखों मे! या भी अपनी थी। यहाँ मुँह से आवाज निकली, एक फूक तमाखू और वही उधर से देर हुई कि निकाली चिलम की नली और चार साटे जमा दिये—सुसरी! कानो मे कीड़े पड गय क्या? ऑडर पर नही चलती है, तो चली जा किसी और के! थोकदार के रहना है, तो लैन से चला कर!

और थोकदारन थी कि आँसू भले ही निकल आयें, पर मुह से एक बोल नही! थोकदार की आदतें तो बस उनने ही समझी थी कि रत्ती मे नीचे, रत्ती मे ऊपर हैं। हुकुम देने का स्वभाव है। उसमे ढिलाई नहीं होनी चाहिए। बड़े थोकदार भी तो ऐसे ही थे। ये उनसे जौ-बराबर कम नही। और थोकदार भी थोकदारन को समझते थे! लाख रूठी हो, जरा ठुड्डी ऊपर उठाके कुछ प्रेम से कह दिया, तो अपने कपोलो की लाली कहाँ छुपाये थोकदारन?

वे दिन और आज के दिन! बेटे बहुओ की उपेक्षा ने थोकदार के हुकुमिया स्वभाव को जैसे आरे से चीर-चीरकर छितरा दिया है। सदुवा की ग्वाल पाली थी, जगल गया था। सदुवा की माँ खेतो मे गई थी। थोकदार भैंसो की सेवा और नातिन पुरी की देख रेख मे लगे थे। बड़ी देर से एक फूक तमाखू की तलब लगी थी। छोटी बहू, पिरिमा बन से लौटी, तो जरा कह दिया—-एक फूंक तमाखू भरके दे जाना, बहू!

पर हे भगवान्! यह दिन दिखान से पहले सिर पर इन्दर राजा का बज्र क्यो न गिरा दिया? जिसकी घर-गिरस्ती सँवारने मे अपने हाड गला दिये और दूसरे बेटे बहुओ के नटोरे और ताने सहे वही आज गुलेल के गोसे की तरह मारती है?

थोकदार चद्रभागा के साथ बठी पिरिमा का देखने, खडे ही रह गए। चित्त मे जैसे सिलसिलेवार अब तक की सारी कटु अनुभूतियाँ एकत्र हो आईं। थोकदार को लगा, जैसे वो जबरन्स्ती रहे जा रहे हैं इन लोगो के सग। उनकी जरूरत कोई महसूस नही करता। उनकी बात, उनकी आवाज अब कोई कीमत नही रखती। द्विविधा मे थोकदार न यही कह पाये कि बहू, चिलम क्यो नही भरी अभी तक और न वहा से तुरत हट ही पाये। भीतर

जैसे कोई बोल रहा हो कि—एक धोखा है यहाँ, मेरा मेरा कहके, किनको छाती से लगा रखा है ?

थोकदार का जी चौमास के बासी दही की तरह खटटा हो आया । यह कैसा भरम था कि वे सोचत रहे—थोकदारन एक बेल लगा गई थी, वही फल गई है । उसकी कल्लियाँ छपरे पर छा गई हैं । कैसी खामखयाली थी कि थोकदार अपने को वृत्त समझते रहे और बेटो को शाखें, जो तने से हटकर रह ही नहीं सकती ।

आज थोकदार को गहरा विराग हो आया । सोच लिया कि बेटा खीम सिंह हो या कि साला मानसिंह पानसिंह या कोई और सिंह हैं सभी साले एक ही तरह के । किसी के यहाँ उनके दिन इज्जत से नही कटने के । इसस अच्छा कहीं बिरानी ठौर चल दिया जाय । इस गाँव-पटटी मे रहकर क्या करेंगे ? बेटो को तो लाज शरम नही पर डूब मरने को उनकी अपनी लाज ही क्या कम है ? पुरखो ने जो गाव पटटी मे अपनी यश-धन छायी है, जा मान-प्रतिष्ठा के मामलो म थोकदार का हवाला दिया जाता है, उसका क्या होगा ?

थोकदार को पारसाल गाँव म आये स्वामी शकरान द जी की याद हो आई । जाते समय हरिद्वार का पता दे गये थे कह कि बच्चा, कभी तीरथ करने आना तो हमारे यहाँ ठहरना ।

थोकदार ने सोचा, क्यो न जोगी बन जाएँ ? आत्मा के दशो से मुक्ति ता मिलेगी ही परलोक भी सुधरेगा । इस ठौर रहने से तो यह कनी काटती रहेगी कि जिन्ह अपना खून मास दिया, उन्होंने ही पानी उतार दिया ।

गहरी विदग्धता मे थोकदार ने एक क्षण को पिरिमा की ओर देखा और फिर तेज कदमो स बाहर की तरफ चल पड़े ।

पिरिमा की खुसी अघा गई तो आप ही अलग हो गयी । पिरमा भागा से बोली—तू जरा ठैर, फिर बातेँ करेंगे । ससुरजी को तमाखू भरके दे आऊँ ।'

चिलम लेके बाहर आई, तो देखा, थोकदार वहाँ नही थे ।

घर से उठके थोकदार पडोस के जसवतसिंह के यहाँ चले गए थे । रास्ते मे उन्होने देखा देवदार का जो बडा पेड परसा काटा गया था उसका चीरकर तख्ते निकाल लिये गए हैं ।

थोकदार को ख्याल आया कि देवदार के वृत्त को चीरकर ये तख्ते निकाले गय हैं लेकिन अब इन तख्तो को जोडकर देवदार का वृक्ष नही बन
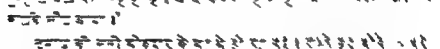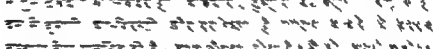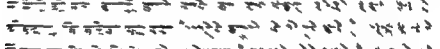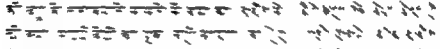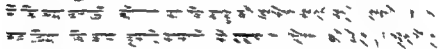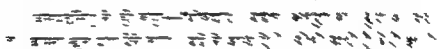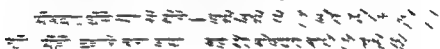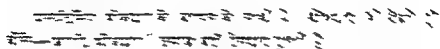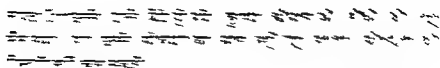
बेटा है। यह थोकदार के ही जबर खून का खेल है। प्रधानजी यह भी कह रहे थे कि सरकार से छोटे मालिक को बन्दूक इनाम मे मिलेगी।' –

थोकदार जरा देर के लिए हतबुद्धि से हो गए। फिर उनका चेहरा लाल हो आया।

घर पहुँचे, तो वहाँ हरसिंह की बहू बैठी थी। थोकदार को ख्याल आया कि उनका तलाक का जो मामला चल रहा है, उसमे सरपच उनका बेटा पानसिंह है। आज उन्हे भी पचायत मे बुलावा था, मन अच्छा न होने से नहा गये थे।

हरसिंह की बहू ने थोकदार के परो को छूते हुए कहा—'ससुरजी जेठजी ने मेरे हक मे फैसला दे दिया। उन लोगो ने तो मुझे चीथडे की तरह अलग फेंक दिया था, मगर जेठजी ने मेरा पक्ष लेकर, मुझ गरीब औरत की जिन्दगानी को बरबाद होने से बचा लिया। नही तो मैं अपने बालको को लिये दर-दर की ठोकरें खाती फिरती। पचैत के सभी भले लोग कर रहे थे कि 'पानसिंह ने भी थोकदार की ही तरह का इन्साफ पसन्द दिल पाया है।' मेरे तो रोम रोम से आपके कुटुम्ब के लिए ज ऐ निकल रही, पिता तुल्य हुए आप। आपका ही पुण्यात्मापन बेचारे पानसिंग जेठ जी मे भी ठहरा। दूध का दूध, पानी का पानी करके आज जो उन्होने इस गरीब औरत की रक्षा कर दी, उसका सारा परताप आपको ही तो ठहरा।

थोकदार अटपटाकर रह गए। काम करते हैं उनके बेटे नाम होता है उनका।

हरसिंह की बहू से दो बातें करके बैठने को ही थे कि सदुवा चिल्लाता हुआ—'बाबा बाबा, आज हमारे चुनवा बकरे ने रतन क्का के कलुवा बकरे को ठेप ठप मे अधमरा बनाके लम्बा कर दिया। उसका एक सीग भी तोड दिया है।'

थोकदार के कानो म एक-एक शब्द दूर-दूर तक बजता रहा। हरिद्वार चल देने का सकल्प पहले ही ढीला पडना शुरू हो चुका था, अब हरसिंह की घरवाली ने स्वय की गाथा सुनाई थी,। सदुआ ने रही सही कसर भी पूरी कर दी। विरिमा उन्ह वापस लौटा देखती, असमजस मे अभी खडी ही थी। थोकदार ने सँभलकर उठते हुए आवाज लगाई—'क्यो, छोटी बहू, अभी तक तमाखू भरके नहीं दिया तूने ? अरे, तुम लोग इतने बेकोडर क्यो हो गये हो ? कोई हाँकने चलानेवाला नही रहा, ऐसा समझते हो क्या ?'

वापसी

जिस कमरे मे धरमबीर मास्टर सोये हुए थे, उसकी एकमात्र खिड़की ठीक पूरब म ही खुलती थी। सवेरे के उजाले की पहली किरण मुँह पर फैला तो खिड़की की तरफ सोई हुई सतवती मास्टरनी थोड़ी-सी ऊँ-आँ करने के बाद फिर धरमबीर मास्टर की पीठ से मुह लगा कर सो गई।

धरमबीर मास्टर को फिर नींद नही आई। नींद की खुमारी मे चिकने पत्थर पर सरकते चिपचिप घोंघा-जैसे सतो मास्टरनी के ओठो को अपनी पीठ पर महसूस करते ही, धरमबीर मास्टर की आँखों से नींद का रहा-सहा बोझ भी उतर गया। पूरी आँखें खोल कर, एक बार, उन्होंने अपनी छाती से लगकर सोये केशो को गौर से देखा और फिर, एकाएक पूरे सात वर्षों के बाद मिला यह गृहस्थी का सुख एक हिचकी की तरह उनके ओठो पर फल गया। इस अनुभूति से उनका मन अजीब सा हो आया कि सतो मास्टरनी आज भी पीठ से ओठ लगा लगाकर ठीक वसे ही सो गई है जसे केशो के होने से पहले सो जाया करती थी।

केशो को धरमबीर मास्टर दा वर्षों का छोड गए थे। सतो मास्टरनी तब तेईस की थी। सात वष ही केशो को छोड़े हुए हैं और सात वष ही सतो मास्टरनी को भी मगर केशो छाती स लगकर सोने के बावजूद कुछ अलग टूटकर सोया हुआ-सा लगता है क्योंकि उसका चेहरा धरमबीर मास्टर की छाती से कुछ फासले पर है। सतो मास्टरनी उनकी पीठ पर ऐसे ओंठ टिकाये टिकाये सो गई है, जैसे कोई छोटी सी बच्ची अपनी माँ के स्तन को मुह लगाये सो गयी हो।

सम्बन्ध भी क्या वस्तु है और कहाँ-कहाँ तक इसकी परिधियाँ जाती हैं, यह सोचते सोचते धरमबीर मास्टर के ओठों पर फिर हलकी-सी हँसी छलक

आई। उन्होंने, पहले, बायें हाथ से सतो मास्टरनी के सिर के बालों को सहलाया और फिर एक लंबी साँस लेकर पीठ को फुला लिया। पीठ पर ज्यादा गहराई तक उतरते सतो मास्टरनी के ओठों के स्पर्श ने उनकी तीन दिनों की अनवरत यात्रा की थकान को एकदम दूर कर दिया।

परसों रात की देहरा एक्सप्रेस से धरमबीर मास्टर बम्बई से रवाना हुए थे और फिर गाड़ी बदलकर मथुरा से कासगंज होते बरेली पहुँचे थे। संयोग की बात कि मोहकमपुर कस्बे में मंगल की पैंठ लगी थी और उनके गाँव देवीपुरवा के कई लोग वहाँ आए थे।

सरपंच नगीना चौधरी ने धरमबीर मास्टर को देखते ही एकदम आवेश-पूर्वक बाहों में बाँध लिया और काफी देर तक झकझोरने के बाद फिर ऐसे माथा चूम लिया, जैसे उनका अपना ही बेटा सात वर्षों के बाद परदेश से लौटा हो। कुछ ही क्षणों में गाँव से पैंठ में आये सारे ही लोग धरमबीर मास्टर का घेर कर खड़े हो गए थे। लोगों के साथ आये छोटे बच्चे बच्चियों की कौतूहलपूर्ण आँखें भी धरमबीर मास्टर की ओर ही फैल गई थी और धरमबीर मास्टर गाँववालों की आत्मीयता से गद्गद् रो पड़े थे।

सरपंच नगीना चौधरी ने कह दिया अब साथ ही साथ गाँव लौट चलेंगे और सतो मास्टरनी को एकदम चौंका देंगे। उन्होंने मास्टर जी का बिस्तरा और संदूक, अटैची वगैरह सारा सामान अपने ताँगे पर रखवा लिया—परतापे, अपने मास्टर दद्दा को तू ही ताँगे पर लिये चलियो, बेटे! हरे राम, हरे राम! ईश्वर बड़ा दयावान होता है। बेचारी सतो मास्टरनी की आँखों के आँसू भी उसने आखिर पोंछ ही लिये।'

आज से सात वर्ष पूर्व जो मास्टर धरमबीर को देवीपुरवा छोड़कर परदेश निकल जाना पड़ा, उसके मूल में सिर्फ यही कारण था कि प्रपितामह देवी चौधरी के नाम पर उछाली गई अपमान की ईंट को अपनी छाती पर झेल नहीं पाए थे। उनके पिता रूपा चौधरी के लिये हुए कर्ज के सिलसिले में पड़ोस के गाँव के बंता साहू ने सतो मास्टरनी के जेवर उतरवा लेने पर भी जाते जाते धिक्कारते हुए कह दिया था—'हम तो देवी चौधरी के नाम पर रकम देते रहे, धरमबीर मास्टर! हमें यह पता नहीं था कि लगातार अड़तीस सालों तक हमारी रकम हजम किये रहने के बाद, तुम अपने बाप के कर्जे के नाम पर चार छल्ले चाँदी के उतार कर देते भी ऐसे आँखें तरेरोगे, जैसे कर्जा तुम्हारे बाप ने नहीं, मेरे बाप ने ले रखा हो।'

बता साहू की याद आते ही धरमबीर मास्टर की आँखें चारों ओर घूम गई थी—कहीं पैंठ में बता साहू भी न आये हों ! हथचक्की के चाक जितना चौड़ा उनका पगड़ काफी दूर से ही उनके होने की सूचना दे देता रहा है। हालांकि बता साहू से आँखें मिल जाने पर भी ग्लानि से झुका लेने या कर्ज चुकाने की असमर्थता के कारण चोट खाये साँप की तरह आँखें तरेरने की कोई स्थिति अब सामने नहीं। बता साहू के सात हजार रुपया में से लगभग पौने चार हजार धरमबीर मास्टर घर रवाना होने से पहले तक में ही भेज चुके थे और बाकी बची चुकाने लायक पूँजी साथ थी। पिछले सात साल से उन्होंने मनीआर्डर द्वारा रुपया भेजना बंद कर दिया ताकि बड़ी एकमुश्त रकम बता साहू के मुंह पर अपनी उसी सतो मास्टरनी के सामने-सामने फेंक सकें, जिसके जेवर उतरवाने के बाद भी बता साहू, उनकी स्वाभिमानी आत्मा को बिच्छू की तरह डंक मार गया।

लगातार चार वर्षों से थोड़े थोड़े करके डाकखाने में जमा किये हुए ढाई हजार रुपये धरमबीर मास्टर ने आने के एक ही सप्ताह पहले निकाले थे और बता साहू को चुकानी रकम अलग कर के, शेष में से सतो मास्टरानी के लिए जेवर और कपड़े खरीद लिये थे। कानों के 'टॉप्स', हाथों की दो दो चूड़ियाँ और एक दो तोले की जंजीर, और चाँदी की बहुत ही खूबसूरत पायजेब ! जेवर के अलावा एक पूरे अस्सी रुपये की खूबसूरत साड़ी और उसी मेल का ब्लाउज। खरीदते समय ही धरमबीर मास्टर ने यह सोच लिया था कि घर पहुँचते ही बता साहू को जवाब भिजवा देंगे कि अपने रुपये ले जाएँ। और जिस समय रुपये लेने आयें बता साहू, उनकी नजर सतो मास्टरानी पर पड़ते ही चुंधिया जाय।

मगर कल पैंठ में धरमबीर मास्टर बता साहू की उपस्थिति नहीं चाह रहे थे। उन्हें लग रहा था, लगातार सात वर्षों तक परदेश रह कर लौटने के बाद भी उनके और बता साहू के बीच कर्जदार और साहूकार का पुराना रिश्ता अभी टूटा नहीं है। हाँ, पूरी रकम वहीं से चुका देने के बाद लौटे होते तो स्थिति दूसरी होती। मगर एक तो बता साहू के मुंह पर रुपये देने की तृष्णा, दूसरे, रुपये के बदले में बता साहू के पास रेहन पड़ी जमीन हवेली के छुटकारे का सवाल

ज्योंही अपना पुश्तैनी मकान करीब आता दिखायी दिया था, खेतों की प्यास एकाएक आँखों में उतर आयी थी। यह सवाल भी कि इन सात वर्षों में सतो मास्टरनी कितना बदल गयी होगी ? केशो कितना बड़ा हो गया होगा ?

सतो मास्टरनी तो पहचान लेगी, मगर केशव तो नही ही पहचान पायेगा।
धरमवीर मास्टर तांगे पर रखी अपनी अटैची को हाथ से सहलाने लगे थे, जैसे उसके अन्दर रखे केशो के लिए लाये 'रेडीमेड' कपड़ो तक उसकी अंगुलियाँ पहुँच रही हो। ऐसा करने मे, उन्हें यह याद आते ही हँसी भी आयी थी कि केशो के लिए कपड़े खरीदते समय पहले वो दो वर्ष के बच्चे के लिए कह बैठे थे।

एक जोर के झटके के साथ तांगा ठीक मास्टर जी की ही देहरी पर रुका था। तांगे के, अपने दरवाज़े पर रुकने की आवाज सुनते ही, ढिबरी हाथ मे उठाये, सतो मास्टरनी बाहर चली आयी थी और एकाएक उसकी आँखो मे खुशी चमक उठी थी—'आ गये पैंठ से ?'

धरमवीर मास्टर को लगा था, सतो मास्टरनी नही बोली है बल्कि अटची मे रखा पायजेबो का जोडा मकान की ऊँची देहरी पर से तांगे मे ठीक उनके कानों के पास गिर पडा। जितने उल्लास के साथ सतो मास्टरनी ने उनको सम्बोधित किया था, उससे धरमवीर मास्टर की आँखो मे एकाएक नमी आ गयी थी। पूरे सात वर्षों के बिछोह के बाद भी सतो मास्टरनी को उन्हे पहचानने मे एक क्षण भी नही लगा था।

ठीक उसी समय तो नही, मगर अदर पहुँचते ही धरमवीर मास्टर यह सोचने लगे थे कि सतो मास्टरनी को एकदम आकस्मिक रूप से चौंकाने और सुख पहुँचाने के विचार से ही तो उन्होने पिछले तीन महीनो से घर को कोई पत्र नही डाला था। इसी बीच नगीना चौधरी के तरफ से भी पत्र पहुँचा कि उनकी ओर से पत्र न आने से सतो मास्टरनी चिन्तित हैं और रोती रहती हैं। धरमवीर मास्टर को नगीना चौधरी का पत्र रवाना होने से दो दिन पहले ही मिला था और उन्होने सोच लिया था कि चिट्ठी के उत्तर से पहले तो खुद ही पहुँच जाएगे।

सतो मास्टरनी की खुशी से काँपती आवेशपूर्ण आवाज की बारीकी से धरमवीर मास्टर को ऐसा लगा था, जैसे लू से झुलसे किसी आदमी के कानो मे एकाएक कही से बर्फीली हवा का झोंका चला आए।

भावुकता को सयत करते धरमवीर मास्टर तांगे से उतर पड़े थे, तो सतो मास्टरनी एकदम चौंककर दो कदम पीछे हट गयी थी। धरमवीर मास्टर को यह सोचते-सोचते फिर हँसी आने को हो गयी थी कि कही ऐसा सतो मास्टरनी ने इसलिए तो नही किया कि सात वर्षों के बिछोह को व

सँभाल न पायें और तांगवाले परतापसिंह की उपस्थिति में ही उसे बाँहों में भर लें।

कल रात पति के बाँहों में भर लेने के भय से, शरमाकर हिरनी की तरह चौंकती पीछे हट जानेवाली सतो मास्टरनी ने इस समय उनके कंधों पर यों बाँहें डाली हुई हैं, जैसे लगातार सात वर्षों से यों ही पड़ी हों। पीठ पर यों आठ टिकाये हैं जैसे पिछले सात वर्षों में कभी हटाये ही न हों।

धरमबीर मास्टर इस बार खुद शरमा गए। उन्हें लगा कि उनकी बारीक सूती बनियान का उतना हिस्सा सतो मास्टरनी के ओठों की ऊष्मा से जलकर खाली हो आया है, जितने में सतो मास्टरनी के आठ ठोस चिकने पत्थर पर रेंगते घोंघों की तरह सुगबुगा रहे हैं। उन्होंने, होले से, सतो मास्टरनी की बाँहों को अपने कंधों पर से उतार दिया और केशो को अपनी दायीं बाँह पर से हटाते, उठ खड़े हुए।

कल साँझ गाँव और खेतों को भर आँख देखने की जो लालसा अतृप्त ही रह गई थी, सतो मास्टरनी को यों पूर्ण तृप्ति के साथ गहरी नींद में डूबी देख कर, फिर तेजी से आँखों में भर आई। धरमबीर मास्टर ने, बारी-बारी से, पहले सतो मास्टरनी और फिर केशो को होले से प्यार किया और फिर कुरता धोती पहनने लगे। देहरी के बाहर आ कर, उन्होंने रात से भर कर रखा लोटा उठाया और पूरबवाले खेतों की ओर चल पड़े। जैसे कोई पूर्व जन्म का कोई संस्कार ही उन्हें सीधे उसी खेत तक खींच ले गया, जहाँ वे सात वर्ष पहले दिशा निबटने जाया करते थे। मगर तब तक में उजाला भरपूर फैल चुका था और धरमबीर मास्टर यह देख कर एकाएक चौंक रह गये कि उनके बंजर छोड़े हुए खेत पर एक छोटा सा किन्तु खूबसूरत मकान बना है और उसके बाहर एक खम्भे में तख्ती ठुकी है—पंचायत घर ग्राम देवी पुरवा।

धरमबीर मास्टर, कुछ क्षणों को, लोटा हाथ में ही लिये रह गए और इन्हीं कुछ क्षणों में अतीत दुबारा आँखों में उभर आया। उन्हें याद है कि यह खेत तो उन्होंने, या उनके पिता रूपा चौधरी ने, बता साहू को भी गिरवी नहीं रखा था तो क्या सतो मास्टरनी ने अपनी मर्जी से बेच दिया या जबर्दस्ती गाँव वालों ने कब्जा जमा लिया है?

यों धरमबीर मास्टर का स्वभाव एकदम शान्त और उदार है, मगर इस प्रश्न ने उन्हें कहीं अन्दर-ही-अन्दर बहुत उत्तेजित कर दिया कि परदेश रहते में उनके खेत पर जबर्दस्ती कब्जा कर लिया गया। उन्हें लगा सिर्फ उस खेत के

चारो ओर की झरबेरिया की ही नही, बल्कि धरमबीर मास्टर के भीतर की गहराइया मे फैली वशागत स्वाभिमान की जडें भी उखाड फेंकी गई हैं।

वश और पूवजा की मर्यादा का प्रश्न ही तो था, जिससे निर्वासित होकर, धरमवीर मास्टर सात वष तक परदेश की धूल फांक्ते रहे ? परम्परागत जमीन कही हमेशा हमेशा के लिए बता साहू की न हो जाय, पूवजा की रखी नीव-वाली पुरानी हवेली कही वता साहू के कब्जे मे न चली जाय और गाँववाला के सामने ही यही उन्हे अपने पैतृक मकान और खेता को छोड कर न जाना पडे—इन्ही सारी आशकाला से पीडित होकर तो धरमबीर मास्टर ने जवान पत्नी के आकपण और दुधमुहे बच्चे की ममता को लगातार सात वर्षों तक सीने मे ही दबाये रखा।

और सारे प्रश्नो म धरमबीर मास्टर उदार हैं, मगर पुरखा की धरती का अह उनके सस्कार मे भी पूवजा की तरह जडें जमाय बैठा है। पिता रूपा चौधरी ने अपनी दयानतदारी और फिजूलखर्ची तथा मुकदमेबाजिया के चलत आधी से ज्यादा जमीन रेहन जरूर रख दी थी, मगर उनके रहते तो बता साहू की यह हिम्मत भी नही हुई कि अपने पांवो से रेहन रखे खेतो को काटता हुआ आये-जाये। धरमबीर मास्टर अपने पिता की एकमात्र सतान होन के बावजूद, स्वभाव से बहुत ही सहिष्णु और लडाई झगडे से दूर रहने वाले हैं। इसीलिए बता साहू के पिता रमता और खुद बता साहू के तगादे भी लगातार पतीस वर्षों से सिफ चिट्ठी पत्री से आते रहे, मगर रूपा चौधरी के मरते ही बता साहू घर पर आकर मकान जमीन खाली करने या कज चुका देन के तगादे करने लगे थे।

उन दिनो धरमबीर शौक़िया तौर पर गाँव के बच्चो को पढा दिया करते थे। खुद हाइस्कूल पढे थे, पत्नी सतवती भी सातवी तक पढी-लिखी थी। सारे गाँव में बडे-बूढा मे भी 'मास्टर साहब, मास्टर साहब' ही उन्हे कहा जाता था और सतो मास्टरनी के लिए 'मास्टरनी जी'। धरमबीर मास्टर चाहते तो जमीन और मकान बेच कर बता साहू का ऋण उतार सकते थे। या जैसे रूपा चौधरी टालते आये थे, एसे ही, तीस पैंतीस बरस वे भी टाल सकते थे, मगर यह मास्टर जी होना उन्ह लढैत बनने से रोकता रहा। बेगैरत बनकर या बेइज्जती कराकर गाँव मे पडे रहने की अपेक्षा उन्हे आत्महत्या कर लेना ज्यादा पसन्द था। अपने इस आत्माभिमान के चलते ही उन्हाने पिछले सात वर्षों मे दिन रात कठोर परिश्रम करके इतना रुपया जमा किया कि बता साहू के मुह पर फेंक सकें। बबई से रवाना होने के पहले ही उन्होन यह

निश्चय कर लिया था कि अब स्थायी रूप से गाँव में ही रहेंगे, इसीलिए खेतों के प्रति मोह और भी ज्यादा गहरा हो आया था।

धरमबीर मास्टर का मन अशांत हो आया। उन्होंने लोटे का पानी यों ही खेत में उलटा कर दिया और गीली मिट्टी से उसे माँजते घर की ओर लौट पड़े। सतो मास्टरनी तब तक उठ चुकी थी और पानी साबुन उसने तैयार रखा था। तो सतो मास्टरनी अभी तक नहीं भूली है कि मास्टर साहब हमेशा साबुन से ही हाथ धोते थे? भरपूर उजाले में धरमबीर मास्टर ने सतो मास्टरनी को एक बार फिर बड़ी खुली खुली आँखों से देखा। उन्हें याद आया कि घर पहुँचने से पहले वे यही सोचते आये थे कि उनके वियोग और चिन्ता के कारण सतो मास्टरनी बहुत दुबली हो आयी होगी, मगर सतो मास्टरनी तो आज भी आँखों में अँटती ही नहीं। उम्र के साथ देह भी और ज्यादा भर आयी और लगता है, पुतलियों में तो सिर्फ उसका चेहरा भर अँट पाता है, शेष देह छूट जाती है।

धरमबीर मास्टर ने एक झटके के साथ सिर हिलाया और आँखें नीची किये लोटा धोने में लग गए। हाथ मुँह धोकर अंदर पहुँचते ही उन्होंने सतो मास्टरनी से पूछना चाहा कि पूरबवाले खेत पर किन लोगों ने कब्जा कर लिया। जब कब्जा किया गया, तब सतो मास्टरनी ने उन्हें सूचित क्यों नहीं किया? पंचायत घर को देखते तो कई साल पुरानी बात लगती है। मगर पूछना उलझना नहीं बना, इसलिए चाय पीकर, कंधों का साथ में लिये, सीधे नगीना चौधरी के घर की ओर बढ़ गए।

रस्मी बातों के बीच ही धरमबीर मास्टर ने पूछ लिया—क्या ताऊ? हमारे पूरबवाले खेत पर कब्जा जमा कर उसमें पंचायत घर किसने बना लिया?

प्रश्न पूछते पूछते ही धरमबीर मास्टर का स्वर अपने आप उत्तेजित हो आया और नगीना चौधरी की ओर से जवाब मिलने से पहले ही, उन्होंने फिर कहना शुरू किया—सारे गाँव में क्या एक हमारा ही खेत रह गया था? या कि यों समझ लिया कि धरमबीर मास्टर तो अब घर लौटने से रहा और सतो मास्टरनी हो चुकी लावारिस यों बिना पूछ ताछ तो बेसहारों की जमीन पर ही कब्जे किये जाते हैं!'

नगीना चौधरी ने उतने उग्र स्वर में बोलते कभी भी नहीं सुना था धरमबीर मास्टर को और वह भी सात वर्षों के बाद घर पहुँचते ही, दूसरे ही दिन!

बोले—'मास्टर साहब, इतनी बडी बात क्यो मुँह से निकालते हो भला ? खेत पर जोर-जबरदस्ती से कब्जा करने का सवाल ही नही। और जहाँ तक सतो मास्टरनी के लावारिस होने का सवाल है, जैसे मैं तुमको अपने बेटो की जगह मानता हूँ, वैसे ही सतो मास्टरनी भी मेरे लिए घर की बहू है ! पचायत घर सतो बहू से इजाजत लेकर ही बनाया गया है।'

नगीना चौधरी के उत्तर से धरमबीर मास्टर कुछ खिसिया गए। उन्हें लगा कि घर पर सतो मास्टरनी से पूछ लेने के बाद ही औरो से कुछ कहना चाहिए था। सतो मास्टरनी के प्रति उनको अचानक रोष हो आया कि इतनी बडी बात के लिए उनसे पूछा तक नही, लिखा तक नही। जिस सतो मास्टरनी ने कभी एक लोटा छाछ तक बिना उनसे पूछे नही दी, वही पूरा खेत उठाकर चुपचाप दे दे, इसके पीछे उन्हे अपनी बहुत बडी अवज्ञा लगी और वे आवेश मे उठ खडे हुए।

नगीना चौधरी ने, सभवत, अनुमान लगा लिया कि मास्टर जी रुष्ट हो गए हैं। उन्होने कधो से पकडकर बिठा लिया—'नाराज तो नही हो गये, मास्टर साहब ? यो मैं भी जानता हूँ कि अपनी जमीन पर कब्जा जमा लेनेवालो के लिए ठाकुर की छाती का खून कैसे उबल आता है, मगर आपके खेत पर गाँववालो ने जोर जबरदस्ती से कब्जा नही जमाया है। पचायतघर के लिए जगह माँग कर ली थी। सतो मास्टरनी ने यो कह के जमीन दे दी थी कि हमारे मास्टर जी ऐसे भले कारज के लिए कभी मना नही करेंगे।' और अगर सतो मास्टरनी कहेगी, तो पचायत घर गिरवाकर खेत ज्यो का त्यो लौटवा देने का जिम्मा मेरा रहा, मगर तुमको नाराज नही होने दूँगा। " सात बरसा के बाद तुम लौटे हो मास्टर, तो जैसे तुम्हारे ही साथ रूपा चौधरी को भी लौटता देखा है।'

कहते-कहते नगीना चौधरी की आँखें छलक आई। धरमबीर मास्टर और भी खिसिया गए। बोले— मैं सतो से पूछे बिना ही चला आया था। अगर उसने खेत दिया है, तो मेरे ही दिये के बराबर है, ताऊ !'

नगीना चौधरी ने खुशी के मारे धरमबीर को बाँहो से भर लिया—'सतो बहू तो पहले ही कहती थी कि खेत का सावजनिक इस्तेमाल होगा तो हमारे मास्टर जी को खुशी ही होगी।' और बेटे केशो रे, तूने अपन बाबू को देखते ही पहचान लिया था न ?'

मतो मास्टरनी से पूछने पर, नगीना चौधरी की बात सच्ची निकलने के बावजूद धरमबीर मास्टर के मन से इस बात का मलाल नहीं गया कि खेत के सिलसिले में उनकी अवना की गयी। नगीना चौधरी की यह बात भी उन्हें खटकती रही कि सतो मास्टरनी कहेगी, तो पचायत घर गिरवा देंगे।' अगर उस समय नगीना चौधरी ने 'मास्टर जी, तुम कहोगे तो पचायत घर गिरवा कर खेत लौटवा देंगे।' कहा होता, तो किसी हद तक उनके आहत अहं की तुष्टि अवश्य हो जाती, ऐसा धरमबीर मास्टर को निरतर लगता रहा। दो चार, दस पाँच दिना तक नहीं, बल्कि पिछने महीने तक यह कचोट बनी रही थी। मगर अब इससे कहीं बड़ी कचोट महसूस होने लग गई। नौकरी छोड़कर घर लौटने पर स्थायी रूप से गाँव रहने का स्वप्न आँखो म था, इसलिए खेना का मोह कचोटता था। अब फिर से बबई वापस लौट जाने की बात कही अदर ही अदर जड पकड़ने लगी है, तो सतो से भी आँखें समेट लेने की स्थिति सामने आ गयी।

घर आये हुए अब ग्यारह महीने हो गए।

आज सुबह भी उजाला ठीक वैसे ही फूटा था, जैसे ग्यारह महीने पहले की सुबह फूटा था—और सिर्फ धरमबीर मास्टर की आँखो मे नहीं, बल्कि पीठ पर भी फैल गया था। थोड़ी सी ऊँ आँ करने के बाद सतो मास्टरनी आज भी ठीक वैसे ही ओठा को उनकी पीठ पर टिकाये सो गई है, जैसे ठोस चिकने पत्थर पर घाघे रेंग रहे हो। आज भी धरमबीर मास्टर को अपनी सूती बनियान का उतना हिस्सा जल कर राख हो गया सा लगता है, जितने मे सतो मास्टरनी के ओठा का स्पर्श गहराई तक उतरता जा रहा है। केशो आज अलबत्ता अलग सोया हुआ है। सतो मास्टरनी से भी उन्होंने कह दिया था कि केशो के साथ सो जाए और खुद अपना बिस्तरा पूरबवाली खिडकी से सटाकर लगा लिया था, मगर आधी रात तक निरतर अपने को अपने ही हाथा धुनते धुनते, थककर सो गये, तो बाद म नींद टूटने पर सतो मास्टरनी को अपने ही बिस्तरे पर पाया था।

सभव था कि यदि रात सोते समय ही सतो मास्टरनी उनके बिस्तरे पर आ गयी होती, तो धरमबीर मास्टर उसे धक्का दे कर भी अपने से दूर हटा देते, मगर आधी रात तक जितना-कुछ उन्होंने सोचा, उससे उनका मन फिर सहिष्णु और उदार हो आया। पूरब वाली खिडकी से सटकर सोते समय ध्यान नही रहा था कि यह पूरबवाला खेत भी उसी तरफ पडता है, जिसके

चारो ओर कभी बेर की झाडियाँ उगी रहती थी और बीच मे पचायत घर नही था ।

गाँव पहुँचने की रात धरमबीर मास्टर ने सतो मास्टरनी के ओठो के पीठ पर टिक आने पर एक लबी साँस खीचकर अपने पेट को अदर की ओर समेट कर, पीठ को ऊँचा कर लिया था और सतो मास्टरनी की ऊष्मा गहराइयो तक उतरती चली गई थी । आज की सुबह—कल या परसो ही तक गाँव छोड कर बबई वापस लौट जाने का निणय कर चुकने की सुबह—धरमबीर मास्टर ने एक लबी साँस खीच कर, अपने पेट को बाहर की ओर फुला लिया और उन्हें लगा कि सतो मास्टरनी के ओठ तो उनकी पीठ पर पर से जरूर फिसल गये हैं, मगर कोई ऐसी चिपचिपी चीज उनकी पीठ पर छूट गयी है, जैसी घोघा के रेंगने से पत्थर पर छूट जाती है ।

कही सतो मास्टरनी, उनके मन के द्वद्व को भाँप कर, रो न रही हो ? ध्यान आते ही धरमबीर मास्टर को ऐसा लगा, जैसे उन्होने अपनी पीठ न हटा ली हो, बल्कि किसी दुधमुँही बच्ची के मुह से माँ का स्तन बाहर निकाल लिया हो ! इसी मोह के चलते तो आज वे इस दारुण स्थिति म आ फँसे है ! बबई मे रहते हमेशा यही लगता रहा धरमबीर मास्टर को कि जिंदगी कोठा पर जाकर नही, सतो मास्टरनी के साथ ही काटी जा सकती है । मगर आज उसी धरमबीर को लग रहा है कि वह जिंदगी मिट्टी हो चुकी, जिसे सतो मास्टरनी के साथ जिया जा सकता था । अब तो सिफ यह काया शेष रह गई है, जिसे सतो मास्टरनी के साथ की अपेक्षा दूर रखने से कम ग्लानि होगी ।

कल साझ तक तो उनकी स्थिति यह थी कि पचायत घर से चुपचाप निकल कर घर लौटती सतो मास्टरनी की गदन ही उडा देने का निश्चय उन्होने कर लिया था । फिर उनका इरादा बना कि परताप चौधरी का सिर भी काट कर सीधे नगीना चौधरी के हाथो मे थमा दें और कहें कि—'ताऊ, ठाकुर की छाती का खून सिफ जमीन पर कब्जा जमा लेनेवालो के लिए ही नही खौलता बल्कि जोरू पर कब्जा जमाने वाले के लिए भी उबलता है ।'

मगर जाने कौन भीतर भीतर आकाशवाणी सी करता रहा कि—मास्टर धरमबीर, बौखलाना आसान है विचार करना कठिन । अपनी जिस प्रतिष्ठा पर चोट पडने से तुम इतना बौखला उठे, वह तो सतो मास्टरनी और

परताप चौधरी की हत्या कर देने पर भी वापस नही होती, बल्कि और ज्यादा मिट्टी मे मिल जाती है !'

उन्हे जैसे अचानक ही हुआ कि कोई भीतर के सारे संधि-स्थलो पर आघात कर रहा है और ध्वनि लगातार यही आ रही कि एक ही तरफ क्यो देखते हो। इसीलिए कल रात उन्होने सतो मास्टरनी की दी हुई रोटियाँ भी चुपचाप खा ली थी। सतो मास्टरनी की आँखो मे झाँकने पर उन्होने चमक को एकदम बुझा हुआ पाया था जो उस हर औरत की आखो मे थर-थराती रहती है, जो तांगे के पीछे बैठे अपने पति को नही देख पाती। देख पाती है सिर्फ तांगे के आगे बैठे हुए परताप चौधरी को और बर्फीली हवा जैसी सनसनाती आवाज मे एकाएक पूछ बैठती है—'आ गये शहर से ?'

धरमबीर मास्टर ने पिछले दिनो ऐसी बातें भी सुनी कि सतो मास्टरनी ग्राम-सेविका बनी थी तो उसका एक बी० डी० ओ० से भी कुछ सबंध हो गया था। और धरमबीर मास्टर घर लौटते ही कहना चाहते थे कि 'सतो मास्टरनी जिस रात तागे मे बैठकर सात वर्षों के बाद गाँव पहुँचा था, मुझे पता नही था कि तुम्हारी आँखो ने परताप चौधरी को देखकर कैसी खुशी से थरथराती आवाज लगायी थी और मुझे देखते ही तुम आशंकित हिरनी की तरह पीछे हट गई थी।

धरमबीर मास्टर यह भी कहना चाहते थे कि नगीना ताऊ ने झूठ नही कहा था कि सतो मास्टरनी को तो मैं अपनी ही बहू समझता हूँ। इतना ही नही, धरमबीर मास्टर यह भी कहना चाहते थे कि 'सतो मास्टरनी, जब नगीना ताऊ ने बताया था कि पूरबवाला खेत तुमने सारे गाँव के सार्वजनिक उपयोग के लिए दे रखा है, उस समय मुझे यह पता नही था कि सिर्फ खेत ही नही, बल्कि तुमने खुद अपने को भी सार्वजनिक उपयोग के लिए '

उस वक्त तो वो बम्बई लौट जाने का इरादा भी कर चुके थे। केशो को साथ ले जाने का भी, लेकिन जब तक म इरादा पुख्ता बनाते जाने कौन चित्त को भ्रमित करता गया और

सतो मास्टरनी की झुकी आँखो को देखकर उन्हें लगा कि वे जो कुछ भी सतो मास्टरनी से कहना चाहते थे, कह चुके और सतो मास्टरनी सुन चुकी। आधी रात तक उन्हे ठीक से नीद नही आयी थी। आँखो मे पिछले सात वर्ष बीतते रहे। इधर सतो मास्टरनी गाँव मे अकेली छूटी है और उधर वो बम्बई महानगरी म। सतो मास्टरनी के हाथो की रोटियाँ नहीं हैं, धरम

वीर मास्टर होटलो मे चले जाते है। सतो मास्टरनी की देह नही और धरम वीर मास्टर जाने कहां कहां भटकते जाते हैं। सतो मास्टरनी के पास धरमवीर मास्टर नही हैं। सतो मास्टरनी परताप चौधरी के पीछे पीछे खेत को पचायत घर मे बदलने चली जाती है।

धरमवीर मास्टर उठ कर खडे हो गए। पीठ-पीछे आकर सोयी सतो मास्टरनी को उन्होने अथाह भावुकता और ममता के साथ देखा। उनकी आंखो मे आंसू छलक आए। एक क्षण को उन्हे लगा कि उन्होने सतो मास्ट रनी को नही, बल्कि लगातार सात वर्षों तक सतो मास्टरनी को अकेली छोडे रहने वाले धरमवीर मास्टर को ही क्षमा किया है। सब कुछ भूलकर फिर से सतो मास्टरनी के साथ बहती नदी के साथ का सा जीवन जीने का सकल्प करते हुए, उन्हें लगा कि बम्बई से लौटे भले ही अरसा हो गया, मगर सतो मास्टरनी के पास तो अभी अभी वापस लौटे हैं।

● ●

अंतिम तृष्णा

ठडी ठडी छाय मे खजूर के तले

ओ ओ-ओ

उक धक्क

हत्त, यार मर जावे लाडला तुस सुमरी पीपल के पेड म उल्टी लटकी नागिन-जैसी पगडण्डी का ! अरे साली के उतार मे चमडे की जूती ऐसे फिसल जाती जसे छिनाल औरत की पीठ पर रेशम का फुन्ना फिसल फिसल जाता । ये रही गर भनार की धार[1] लेकिन फिसले तो फिर वो ओ ओ ओ—सवा मील नीचे की तलाड बाडी के गधेरो से पहले कहाँ अटकना वच वच्च

गिरते गिरते बचा रतनसिंह, तो थोडी सावधानी आई कि माना भीतर बाहर से ज्यादा बोझ है और पतली गरदन वाली, यानी गुलाबी का सुरूर ऊपर से, लेकिन पहुचना तो आखिर घर ही है, कहीं और नही !

आँखो मे सितारे से झिलमिला रहे हैं। एक अद्भुत विस्तार सा अनुभव हो रहा है भीतर, जबकि बाहर धरती सिकुड गई-सी मालूम पडती है। कोशिश करने पर भी ज्यादा दूर तक कोई दृश्य साथ नही चल रहा। नही तो यहाँ से गाँव इस छोर से वहाँ, स्यालीधार की चुंगी तक साफ-साफ दिखाई पडता है। लगता है, पानी ज्यादा इकटठा हो गया है भीतर। घडे मे भरा सा मालूम पडता है।

एक बार छल्ल पानी उलटने के बाद, गला खँखारा तो लगा कि अनारकली क सुरूर मे कधे पर का दो बाल्टियो वाला बँहगा (काँवर) ही नही डगमगा रहा बल्कि कही लछिमा की तिमिल के पत्तो के दोनो में भरे पानी-जसी

१—ऊँची उपत्यका

छलछलाती आँखो का ध्यान भी सतुलन को बिगाड रहा है। नही तो इसी एकसार उतार वाली पगडण्डी मे रतनसिंह रोज अनारकली की खुमारी लिये-लिये ही तो उतरता है। मजाल है, जो कभी पाँव गलत पड जाय। बहगे के दोनो कोनो पर टँगी बाल्टियो म कड़ू तेल की शीशी रखकर बाजार से चलता और घर पहुँचने पर, बाल्टी का ढक्कन खोलता है, तो शीशी ज्यो की त्यो खडी ही मिलती है।

क्या नाम कहते हैं, दिशा से कठिन दशा का फेर होता है।

बाजार से उसके लौटने की प्रतीक्षा मे बार बार देहरी पर आकर खडी हो जाने वाली लछिमा आज लगातार साढे तीन महीने से बिस्तर पर पडी है। तिमिल के पत्तो के दोनो मे भरे पानी की तरह उसकी आँखो मे भी आँसू भरे रहते हैं। अब तो समझो कि घर से ही भद्रा साथ चलती है। बहँगे के के दोनो ओर दूध की बाल्टियाँ लटकाकर, बाजार की ओर रवाना होता रतन सिंह अगर चाख के कोने मे कराहती लछिमा की ओर आख उठाता है, तो लगता है, बहँगे के एक ओर आकर वह खुद लटक गयी है, और दूसरी ओर उसकी सौत रेवती। न चाहते भी, रतनसिंह के मुह से रात भर की बेचैनी शराब के भभूके की तरह बाहर फूट आती है—'अरे यार, निठुर औरत। जब तक मुझे दो तरफा बाँस नही लगता, तब तक तून भी सुख से कहाँ रहना और रहने देना है।'

रेवती, यानी नौली को रतनसिंह नयी-नयी लाया है। अभी महीना भी पूरा नही हुआ। देखने मे ही नही, बल्कि स्वभाव की भी अच्छी है रेवती। रात की रोटियाँ निबटती हैं, तो रतनसिंह अपने कमरे मे जाकर बतन माँजने धोने के बाद लौटने वाली रेवती की प्रतीक्षा मे कान लगाये रहता है। इस तरफ आते म उसके पाँवो के झाँवर बजते हैं, तो ध्यान आता है कि इसके लिय नये जेवर नही गढाये गए। लछिमा का जेवर उतारकर ही दिया गया। बतन सहेज कर लौटती है रेवती, लेकिन रतनसिंह की आत्मा क्षस्म कर उठती है—लछिमा आ रही क्या?

जैसे लछिमा के पाँवो-पर-पाँव रखकर चलती है रेवती।

क्या है कि वस्तु कोई नही बोलती, सिफ आवाज करती है लेकिन आदमी के तो कान भी उसके ही अनुसार चलने वाले हुए, इसलिये जहाँ उसने किसी वस्तु के प्रति ध्यान लगाया, तुरत यही भ्रम उपस्थित होने वाला हुआ कि बोल

रही है और जब बोल रही है, तो आदमी अपना ध्यान कैसे हटा ले ? और क्या हटाये ?

जाने कितनी बार यही हुआ कि लछिमा के सिवा कोई नहीं, लेकिन जहाँ ध्यान आया कि वह तो बेचारी बिस्तर पर पड़ी होगी इस वक्त, सिवा इसके क्या रह जाता कि रेवती होगी। चूंकि अभ्यास पुराना लछिमा का है कानों को, इससे भ्रम होता होगा कि झाँवर एक सी बजती है।

कई बार कह दिया रतनसिंह ने कि काम से निबटकर सीधे मेरे पास चली आया कर, मगर रेवती पहले लछिमा के कोने में ही आती है। वहाँ से लौटती है तो ठीक लछिमा की देह की जैसी तेज बुखार की गंध उससे भी फूटने लगती है और रतनसिंह अपने मुँह से ठर्रे का भभूका ऊपर नाक की सीध में छोड़कर लगातार जोर जोर से जाने क्या सूंघता और किस सोच में भटकता चला जाता है। समतल होते वक्त लग जाता है।

उबक जरे रह साले रतनिया अपनी औकात में ! और बनेगा स ले, जोरू का भगत ?

उतार उतरते उतरते, रतनसिंह मन ही-मन अपने को कोसता भी जा रहा था। न उसने बार-बार लछिमा से यह कसम खायी होती कि चाहे घर गृहस्थी उजड़ ही क्या न जाये, मगर वह उसकी छाती पर सौत नहीं बिठायेगा और न आज आत्मा का कठफोड़वा यों उसकी देह का बार बार टिकोरता कि—अरे यार निठुर रतनिया ! बाहर के कोने में तेरी कभी की प्राणों की प्यारी लछिमा काँटे में फँसी मछली जैसी छटपटा रही और तू निर्मोही मरद नौली के साथ रंगरेलियाँ कर रहा ? उसके प्राण कलप रहे तुझे झाँवरों की छम छमाट से फुरसत नहीं ?

आज सवेरे जब रतनसिंह घर से बाहर निकलने लगा था, तो कैंचीमार सिगरेट का धुआं फरकराते समय एकाएक जले ओठों पर गर्म राख सी बिखर गई थी। लगा था लछिमा उसे रेवती के हाथों का भात खाकर, सिगरेट पीते एकटक देख रही है और कुढ़न से उसका बीमार चेहरा और भी ज्यादा विकृत हो गया है। जैसे कि वह आँखों से ही साफ साफ कह रही है कि—नहीं भुगतेगा, रे निठुर मरद मुझ मरती की आँखों के आगे का यह मौज मजा तो तू नहीं भुगतने पायेगा !

हालांकि लछिमा कल रात ज्यादा नहीं कराही और छोटी जानकी भी चुपचाप सो गई और रतनसिंह बड़ी देर रात तक रेवती से हँसी ठिठोली

करता रहा। और दिनो तो घटी घटी रेवती चौंक उठती कि दीदी को ज्यादा तक्लीफ हो गई है, शायद! या कि—जानकी छोरी का गला सूख गया लगता है! माँ के साथ ही छोरी के भी खाँसने की आवाज लछिमा या उसकी लडकी को तकलीफ का भ्रम होते ही, वह तुरन्त उठ खडी होती और पाँवों की आवाज को सास से तक छिपाती, लछिमा के कमरे मे पहुँच जाती।

लछिमा लम्बी चाख के पच्छिम वाले कोने मे सोती है। वहाँ से उसके खाँसने कराहने की भले ही आ जाय, किसी के धीमे बोलने की आवाज तो यहाँ तक रात के गहरे सन्नाटे मे भी नही आ पाती है।

ठीक कि लछिमा और रेवती के आपस मे बतियाने की आवाजें तो यहाँ तक नहीं ही आ पाती हैं, लेकिन क्या कुछ बोल रही होगी, इसका अनुमान तो अँधेरे को चीरती गोरय्या की भाँति उडता, घूमता है, यहाँ से वहाँ तक की दूरी का अतर्धान बनाता हुआ। और इधर कमरे मे अकेला छूट गया रतनसिंह कुढ़ कर रह जाता है।

बीच मे, भी रेवती जानकी को अपने ही बिस्तर पर उठा लाती कि कही उसे भी बुखार न चढ़ जाए। रतनसिंह का जी और भी खिना जाता, जब कि जानकी तो रेवती से किसी तरह भी नही चुपती और उधर से एक दम काँपती सी आवाज मे लछिमा पुकारती—'यहाँ दे जा, रेवा, तेरे पास नही सोयेगी छोरी।' रतनसिंह को होता कि भगवान दाहिना हुआ, पिण्ड छूटेगा अब, मगर रेवती जानकी को और कसकर छाती से लगा लेती। आखिर रेवती की छाती से लगी लगी ही वह, दूध की जगह लार ही घुट-काती घुटकाती सो जाती।

रेवती की छाती से लगी जानकी जैसी घुटुक्क घुटुक्क की आवाजें निकालती, उससे रतनसिंह को वितृष्णा ही होती। कई बार तो उसके मन मे यह दुष्कल्पना तक उभर आती कि रेवती उसकी ब्याहता नही, बल्कि भौजी है। पहला सात आठ साल पहले परदेश गया, तब से लौटा नहीं। ससुराल म सिफ सास थी, वह स्वय परलोक सिधारती, रेवती के यहाँ तक पहुँचने का रास्ता खोल गई। पिछले चार पाँच वर्षों से रेवती मायके मे ही पडी थी। हर्जे-खर्चे के रुपये भरकर, रतनसिह ले आया। कही ऐसा तो नही कि इस बीच कभी रेवती की कोख भर गई हो और बच्चा मर गया हो बिना कोख-भरी औरत को तो बच्चे छाती से लगाकर सुलाने का ऐसा शऊर आ

नही सकता ! फिर दूध न आता हो, तो घुटुक्क घुटुक्क की ऐसी आवाज कहा से होगी ?

एक बार अचानक ही वह पूछ बैठा था—'क्यो वे, तेरा पहली कोख का बच्चा कितने महीने तक जिन्दा रहा था ?

रेवती ने उसका मुह तत्काल अपनी हथेली से ढांप दिया था—छि शराब के नशे ने तुम्हारी मति मार रखी । बेशरम ! जब मेरा ब्याह हुआ, तब उमर कुल पद्रह ही साल की । अलग तब तो हुई नही थी मैं और इन बेशरमो को कोख की सूझ रही—बेशरम ! दूध थाड़े निकलता है, छोरो लार घुटकाती है ।'

मगर फिर भी रतनसिंह को लगता रहा कि उधर जानकी लार की जगह दूध उगलती जा रही और इधर उसके मुह से शराब के भभके की जगह लछिमा का जैसा बुखार बाहर फूटता जा रहा ।

'हे राम, तुम तो अच्छे भले भी लछिमा दीदी से ज्यादा गौराट-कौराट करते हो रात भर ! सवेरे सवेरे रेवती ने टोक दिया था आज—कल से जरा कम पीकर आया करो । छिच्छी, दूध बेचकर ठर्रा पी आने वाले खसमो से तो नारायण ही बचाये ।'

रतनसिंह को आज भी यही लगा था कि रेवती नही, लछिमा बोल रही है । दूसरा कोई नही रुपये मे सालह आने लछिमा बोल रही है । लछिमा, जिसके कधो पर सिर टिका टिकाकर, उसने कसमे खायी थी कि—'लछिमा, यो तो हमारे इस खासपर्जे के इलाके मे, दो दो तीन-तीन औरतो का आम रिवाज जैसा हुआ । क्या नाम कहते हैं, यहाँ के लोग भस की दर से शादी करने मे विश्वास रखने वाले हुए ! मगर मैंने तो ससुरे भमो को गोली दाग देनी, तब भी नौली नही लानी ।'

हालांकि लछिमा ने कभी नही कहा कि रतनसिंह दूसरी शादी न करे, मगर रतनसिंह न जाने कितनी बार अपने-आप ही कसम खाता रहा । अब इस समय, जबकि भीतर बादल जसे घुमड रहे हैं—इस समय क्यो छिपाना कि न्याय की दृष्टि से देखो, तो औरत क्या हुई जैसे साक्षात देवी की सुदर प्रतिमा ठहरी । मुह पर सदव एक आभा जसे कही भीतर मदिर मे का सा दीपक जलाये चलती हो । दु ख मे भी दोप दूसरो पर नही । खुद रतनसिंह की माँ भी तो यही कहती कि—मेरी लछिमा-जसी गाँव म कोई नही !

शहर से लगे खासपर्जा कहे जाने वाले गाँवो के किसान दूध बेचने का धधा ही मुख्य रूप से करते। तीन तीन, चार चार भाबरी भैंसें बाँधें रहते और 'भैंस पीछे नौली'[1] की कहावत कई लोगो पर खरी उतरती। नौकर रखने से काम कायदे से नही चलता, क्योकि एक तो नौकर ने मन लगाकर काम नही करना, दूसरे, तनखा लेनी नकद! इसी से नौकर की जगह नौली ले आने मे ज्यादा फायदे देखे जाते। हालांकि बाद मे जब तीन तीन के बच्चा का रेहड सँभालना पडता, तो और ज्यादा साँसत होती। आँगन मे सुअरी के के बच्चो की सी भीड होती। जब तक मे एक को बाडे मे छिच्छी कराओ तब तक दूसरा पायजामे मे ही टट्टी पेशाब कर देता।

रतनसिंह अक्सर कहा करता—'ये साले दो दो, तीन-तीन औरतो वाले सुगर के जैसे घेटे तो जनमा देते, मगर सँभालते नही। भैंस के चारो थन निचोडने के लिए उसके कटडे और थोरिया को मार डालते, मगर औरतो का दूध बाजार म नही बिकता, इसलिए मनुष्य योनि म आने वाले सुगर के घेटो का गला नहीं दबोचते। न सालो का कोई जाधिया सभालता, न कोई इनके सिर कटोरकर, जू मारता और न कोई इन कटडो को पढाने लिखान की फिकर ही करता। करने को बौडम लक्ष्मी, सीता और पार्वती देवी की पूजा करते—पूछे इनसे कोई कि इन तीनो देवियो के कितने बच्चे पैदा हुए ?'

तब रतनसिंह अपनी छोटी सी गृहस्थी का लछिमा के साथ ही सपना देखा करता था। खाने भर को अन्न खेतो मे हो जाता है। नून-तेल कपडे लत्ते के बाहरी खर्च पूरे करने को एक भाबरी भैंस काफी। आँगन मे खेलन को दो तीन बच्चे ही काफी हो जाते हैं। तब तो लछिमा की पहली ही औलाद भी कोख मे ही थी। रतनसिंह कुल तेईस-चौबीस का। भावुक और रमजीवी। मेले नौटकी और सिनेमा का शौकीन। सिर पर सिर्फ माँ का अनुशासन। मेले सिनेमा मे लछिमा को ले जाने से माँ कभी अगर टोकती भी, तो रतनसिंह माँ को मनाकर अपना जिद पूरी कर ही लेता।

एकाध पैग चढा लेने की आदत जरूर थी, सगत सोहबत के कारण, मगर हल्के से नशे मे उसकी आवाज और ज्यादा खुल आती थी। शहर की घाटी मे बसे गावो की पेड पर लटकी नागिन-जैसी सँकरी सडक पर उतरते हुए, तब रतनसिंह के पावो मे अपने-आप लय सी फूटने लगती थी और वह भरपूर कण्ठ से गा उठता था—

---

१ नवेली

लछिमा, तेरी लाल बनैन रिटिगे मना मे—
मेरि सुवना, बुरुशो जोडि फुलिगे वना मे।'[1]

उक री, री, साले, रतनिया—रह अपनी ओकात म ! बहुत बनता था, साले, मेले नौटकी और नाच मुजरो का शौकीन ? और रखता है नोटा की बत्तियां पायजामे के नाडे मे खोसकर, ताकि कुतुली मिरासिन कमर टटोले ? और फँसेगा स्सारे, जुआरियो—शराबियो और कबाबियो की सगत मे ? और चढा जायेगा पूरी अद्धी ? और गायगा, कुतुली मिरासिन क फिल्मी गाने ठण्डी ठण्डी रेत म खजूर के तले ओ ओ ओ हाय, तेरे इतजार मे, ओ तेरे इतजार मे दिल मेरा जले हाये उक्क ।

भीतर कोई लछमेश्वर के ऊपर डेरा डाले पडे नृत्यसम्राट उदयशकर के नाटको के पर्दे पर का छायानट जैसा—बुरी सोहबत मे फँसने से पहले का रतनसिंह—बार बार अपने करतब-से दिखाता है। विगट मे घटित हुआ पान के पत्ते के ऊपर पान के पत्ते की तरह इकट्ठा है। एक उठाओ, दूसरा—दूसरा उठाओ, तीसरा मौजूद ! बादलो का एक रेला इधर से उधर ता दूसरा उधर से इधर को चलता मालूम पडता है और रतनसिंह की सारी सावधानी के बावजूद पाँवो का सतुलन बार बार डगमगा ही जाता है।

आज सवेरे खोखली आँखो से एकटक घूरती लछिमा को देखकर रतन सिंह के ओठो पर राख जैसी बिखर आई थी। मन यह कहने को तडप उठा था कि—'यार बिस्तर पर ठण्डी हवा-जैसी लेटी हुई, लछिमा ! तू मेरी आत्मा की वह आग कहाँ देख पायेगी, जो अन्दर ही अन्दर मुझे ही सुलगाती रहती और मेरी अपनी ही राख मेरे ही ओठो पर फैल जाती ! तू औरत की जात ता यही सोचती होगी कि खसम ससुरा गोश्त खून का भूखा था जसे ही बीमार पडी, सो नौली उठा लाया और अब मेरी बीमार छाती पर नौटकी खेलता ? मगर, डियर, तेरे कधो पर सिर टिका टिकाकर खायी कसमो के आगे झूठा पडा हुआ रतनिया स्साला पश्चाताप की भट्ठी म किस तरह सुलगता, यह तू नही देखेगी ! काफल के पेड म लगे लाल लाल फल सभी को दिखायी देते, यार मगर काफल के पेड का टिकोरता कठफोडवा कितना को दिखाई

---

१ लछिमा, तेरी लाल रग की बनियान मेरे मन मे ऐसे बस गयी है, जैसे बुरुश क लाल फूलो की जोडी बन मे फूल गयी हो !

देता ? जगल मे आग लगी, सभी ने देखी, प्यारी—हृदय मे लगी अगन किसको दिखायी पडने वाली हुई ?

कहने को तो जाने और भी कितनी बातें, हो सकती थी, लेकिन कह कुछ भी नही पाया। इसलिए कि लछिमा ने तो कभी इस बात की शिकायत की ही नही कि रतनसिह उसके जीते जी नौली क्यो ले आया। उसने तो जिस दिन रेवती की डोली आँगन मे पहुँची, अस्वस्थ होने के बावजूद उसकी डोली के चारो ओर अक्षत फूल बिखेरे। बडे लाड से उसका मुकुट से दबा घूघट उठाया और माथा चूमते हुए गले से लगाया। गाँव के जो लोग इस ताक मे थे कि अब देखेंगे धुँआ इस घर का भी बहुत नौटकी उतारता था दूसरो की अब इसके घर मे ही लडेंगी जब दोनो एक दूसरे की झाँकरी को नोचती खोंचती मगर एक नदी की दो धारायें हो गई दोना। लछिमा ने उसको भी अपने-सा ही कर लिया !

इसी से तो रतनसिह को होता कि यो चुपचाप बिस्तर मे पडी-पडी कराहती रहने से तो लछिमा चीख चीखकर उसे कोसती कि रहते उसके नौली क्यो ले आया। और तब रतनसिह पहले उसे दुतकारता कि तू कौन होती है मुझपर हुकूमत चलाने वाली ? और फिर शायद, एकाध झापड भी मार बैठता। और फिर जब लछिमा मुह ढाँककर रोती चली जाती तो उसे चुप कराते-कराते बता देता कि—लछिमा, असल बात है यह कि पिछले बरस जब तुझे यह जानकी छोरी हुई और तुझे उन दिनो भी बरसात मे घास पात काटने से परसूत की बीमारी लग गई, तभी मेरे दिल मे भी यह बात आई कि अगर इस समय मेरी भी दो घरवालियाँ होती, तो दूसरी काम करती, तू सिर्फ जानकी छोरी को सँभालती। मगर जैसी कसमे मैंने अपने आप ही तुझसे खा रखी ठहरी, पश्चाताप होने लगा कि तेरे जरा बीमार पडते ही मन मे पाप आ गया कथा ? और फिर इस पाप को मन से निकालने को गाँव के चद शौकीनो के साथ कुतुली मिरासिन की बैठको मे जाना शुरू किया। औकात से ज्यादा ठरा चढाने लगा। मुझे उम्मीद थी तू थोडे ही दिनो मे अच्छी हो जायेगी, तो फिर मेरा यह ठर्रा और ढर्रा, दोना अपने-आप छूट जायेंगे। मगर तू तो मेरी अन्दरूनी हालत को जानकर भी अनजान-जसी, लगातार बिस्तर से ही लगी रह गई और मेरी हालत होती चली गई, धोबी के कुत्ते की जैसी ! और फिर तुझसे नजर चुराकर नौली ले आया मैं कि इजा भी यही कह रही कि एक से दो भले। कारोबार ठप्प हो रहा। हालाँकि इजा ने कभी नही कहा, दो चार सयाना ने जरूर कहा।

मुझको भी एक बहाना सा हो गया और संयोग से रेवती भी यहाँ तक आ पहुँची। और अब तू रात भर मुझे कोसती होगी? कोसती रहो, डियर! यख मारे बैठे हूँ, अब क्या करूँ! अब तो या तेरी या अपनी मौत का इन्तजार ही कर सकता हूँ।

खीझ और ग्लानि के क्षणों मे वह जाने क्या-क्या कहने को होता है मगर लछिमा कुछ कहने का अवसर ही नही देती। उसकी यह मिट्टी-जसी सहनशक्ति रतनसिंह की आत्मा को उद्भ्रान्त कर देती है। कोई आग-सी है, जो धीरे धीरे सुलगकर, उँगलियो की पोर से आ लगी सिगरेट की तरह जलाती रहती है और अब लछिमा के सामने सिगरेट पीते मे रतनसिंह को लगता है कि यह उसकी खुद ही लगायी आग का धुआँ अन्दर से बाहर निकल रहा है।

एक कोने मे नरककाल की तरह बिस्तर पर लेटी हुई, खोखली और अन्दर ही अन्दर सुलगती लकडी-जैसी लछिमा—उसे लगता है, वह सिर्फ इसीलिए मृत्यु शय्या पर महीनो से लेटी है कि रतनसिंह जो अपनी कसमे तोडकर नौली ले आया है, इसका कठोरतम दण्ड उसे दे सके। जाने कौन भीतर भीतर तिल तिल तोडता गया और अब लछिमा की मरणासन्न आँखो को झेल पाने की शक्ति रतनसिंह मे रह नही गई। और तो और, वह रेवती ही नही बल्कि जानकी मे भी उसी की प्रतिच्छाया देखने लगता है कभी कभी और तब जानकी उसे ऐसी लगती है, जसे लछिमा ने अपनी सवा साल की बीमारी उतारकर, उस पर फेंक दी हो। कभी रात मे अचानक आँखें खुलती है और वह रेवती की तरफ मुडता है तो जानकी की फैली झाँकरी उस डरावनी लगती है रेवती की ओर पीठ करके वह आकाश की ओर ठर्रे के भभूके छोडता और नथुने फला फैलाकर साँसें लेता छोडता रहता है। उधर स लछिमा के कराहने की आवाज आती है और इधर उसे लगता है, वह लाशघर म पहरे पर बैठा है। ऊपर से गरम तवे पर ठडे पानी के जैसे छींट रवती अलग से छोडती है कि—हुँहो, कुछ तो शरम करो। उधर बेचारी दीदी की बीमारी ठीक होने पर नही आ रही और इधर तुम शराब से मूमत घर पहुँचते हो?

क्या करे रतनसिंह? माँ के, रेवती के कहने पर जिला अस्पताल म भी दिखा लिया। वहाँ जवाब मिला कि आगरा ले जाओ या दिल्ली! और दिल्ली आप गए, ना बाप!

वरं रो रो

फिसलती टाँगो पर वहग का अगला हिस्सा टिकाकर, रतनसिंह गिरते गिरते सँभल गया। हाँ, अगली ओर की बाल्टी का ढक्कन जरूर कुछ उघड आया। रतनसिंह को याद आया, आज माँ ने बर्फी और जलेबी मँगा रखी है। कहा था सबेरे कि—'अब यह टिटरी शायद और ज्यादा नही चलेगी, रे रतनिया! आज अन्न छूटे अठार दिन हो गये। दूध और दवा, छल्ल करके, दोनो को ज्यो-का-त्यो उलट देती। न जाने किस तरह और किसमे प्राण अटके हुए अभागिनी के। रात दिन आँखें उठाये आकाश की ओर देखती रहती चील की तरह! न जाने क्या तृष्णा रह गयी इसके कलेजे मे? वैसे एक बार को जरा कोशिश यह भी करके देख लेता कि अगर कुछ जमीन जेवर बेचकर भी

माँ ने साथ ही यह भी कहा था कि एक बार रतनसिंह उससे खुद भी पूछ ले कि आखिर वह चाहती क्या है! सास पूछते-पूछते थक गई। सौत सहमती है। कहती है—मैं अपने मुँह से पूछूगी, तो कही दिदी यही न सोचने लगें कि रौंड मेरे मरने का इन्तजार कर रही!

मगर रतनसिंह कुछ पूछने का साहस जुटा नहीं पाता। साहस क्या, इच्छा भी नहीं। यो, बिना पूछे ही उसे इतना तो साफ लगता है कि लछिमा की अगर कोई आखिरी इच्छा हुई भी तो यही हो सकती है कि कोई ऐसा वज्र गिर पड़े कि उसकी छाती पर बिठायी गई नौली रेवती की लाश कसम तोड़ने वाले रतनसिंह की

जब भी भीतर गहरी हताशा और ग्लानि भरती है, जाने क्या एक इसी लालपरी का सहारा सूझता है। होश मे घर पहुँचो, तो लछिमा को देखना ग्रहण लगे चद्रमा के तरफ देखना हो जाता है। ऐसे मे कभी-कभी यहाँ तक भ्रांति होने लगती है कि बाहर जो है, सो ही, शायद, भीतर नही। भीतर कही सौत ला दिये गए होने का कोप जरूर है?

'अरे, यार डकिनी औरत! तू तो लगभग मुर्दा हो चुकी, अब दूसरो को शाप क्यो देती?'—रतनसिंह चीखने-चीखने को आता है। सामने किसी मकान की छत से उठता धुआ दिखायी दे जाता है, तो एकाएक जलती चिता आँखो मे उभर आती है। जाने कब और कैसे यह कची मार्का सिगरेट की बत्ती ओठो से लग जाती है और अन्दर कोई काठ सा सुलगता जाता है—उक्र् उक्र्

आज कुछ और ज्यादा चढ़ा गया रतनसिंह। सुबह से ही, जाने क्यो, एक अजीब दुष्कल्पना उसे घेरती रही—कही सचमुच तो नही छोड जायेगी लछिमा ?

जब तक सामने है आदमी, तब तक अमर-सा है। जहाँ सदा को ओझल वहाँ दस-बीस दिन यह विश्वास करना भी कठिन कि नही है। जितनी निकटता, मौत का डर आता ही विकट है। प्रेम में सौ उलट-पलट हैं मगर है आखिर प्रेम ही—और अगर प्रेम है तो प्राणो मे कँपकँपी भी जरूर होनी है। घरवाली हर हाल मे घरवाली है। दूसरी लाख ले आओ, मगर जो जिसका स्थान, उसी से भरा रहता है। जहाँ वह हटा, वहाँ जगह खाली हुई और जब तक नही लौटा, खाली ही रहना है उस स्थान को भी।

लछिमा को कितना कितना तो वह प्यार करता था और आज भी लछिमा से मन का चोर खुद ही थरथराता है।

जिस अभागिनी ने कभी ओठ उघाडकर कुछ नही माँगा, उसी से जलेबी-कलाकन्द-जैसी चीज खाने के लिए, उसकी अंतिम तृष्णा पूछने की कठोरता बटोरना सहज तो नही जिसके कधो पर सिर टिकाते मे पलकें सुख से भारी हो आती थी, उसी की कंकाल सी काया से मुक्ति पाने को खुद ही इतना क्रूर प्रश्न मगर फिर भी आज रतनसिंह का पूछना ही है। इसलिए नही कि लछिमा वास्तव मे यह कह बैठे कि जलेबी-बर्फी खाने की इच्छा हो रही है। बल्कि इसलिए कि लछिमा का दमित आक्रोश फूट पडे और वह उसे बुरी तरह से धिक्कारे। झूठी कसम खाने के बाद, सौत छाती पर लाने से पहले एक बार पूछने तक की आवश्यकता न समझने की उसकी धूर्तता के लिए उसे गालियाँ दे और चीखती हुई कह दे—'मै इस मत्युशय्या पर बीमारी के आघात से नहीं पड़ी, बल्कि विश्वासघात करके जो चोट तुमने मेरी छाती मे मारी, उसके कारण मर रही।' ताकि रतनसिंह भी अपने अन्दर की सारी छटपटाहट को उसके सामने ठीक वैसे ही उगल दे, जैसे शुरू-शुरू मे ठर्रा उलट दिया करता था। और फिर जब लछिमा खब रो रो कर चुप हो जाये, तब जलेबी-बर्फी खाने को पूछे और कहे कि—'लछिमा, धोखा तो तुझे दे बैठा हूँ, मगर मेरी खातिर तू निबाह ही लेगी और जाहिर है कि उसे तब भी उम्मीद थी कि लछिमा मान जायेगी।' और इसीलिए इस दुष्कल्पना से मुक्ति के चक्कर मे ही वह और ज्यादा चढाता चला गया कि कही उसके पूछने-पूछते ही लछिमा

जलेबी या बर्फी के टुकड़े को मुह मे रखे रखे, बिना कुछ भी बोले ही, अपने प्राण न त्याग दे

अभी गाँव से इधर-उधर ही था कि चचेरा भाई बिकरम दौड़कर आता दिखायी दे गया। आशका से रतनसिंह के कधे काँप गए और बहँगे के दोनो ओर लटकी बाल्टियाँ जोर से खनखना उठी।

'रतनदा, लछिमा भौजी की तबीयत ज्यादा खराब हो गई,' बिकरम ने कहा, तो रतनसिंह को थोडा सा धैर्य बँधा। सामने ही पतली-सी धारा बह रही थी। ठण्डे पानी से हाथ मुँह धो, तेजी से घर की ओर चल पडा।

घर का परिदृश्य इस वक्त पूरी तरह बदला पडा था। कुछ औरतें लछिमा को घेरे थी और कुछ मर्द इधर उधर टहलते बातें कर रहे थे। रतनसिंह पागल की तरह आगे बढा। अचानक नशे से कही ज्यादा दुख छा गया उसकी आँखो मे और पूरी सृष्टि मे उसे सिर्फ लछिमा ही उपस्थित रह गई।

वह मरणासन्न पडी थी, अपने उसी चिरपरिचित कोने मे, जो इस अरसे मे उसका घोसला बनता गया था।

कुछ क्षण तो रतनसिंह उसे दूर से ही ताकता रहा और फिर तेजी से बहँगा एक तरफ फेंकता और जगह बनाता, सीधे लछिमा के सिरहाने पहुँच गया। वह शात पडी थी। उसने सूखे कधो को कुछ जोर से हिलाकर, कातर कण्ठ से उसने पूछा—' तू यो चुप क्यो है, लछिमा? अरे, तू बोल तो सही कि आखिर तू चाहती क्या है? तू कुछ मत छिपा, लछिमा, तुझे बानणी देवी की शपथ, तू कुछ मत छिपा। तेरी हर इच्छा पूरी करूँगा। जमीन जायदाद बेच दूगा। तेरा इलाज दिल्ली ले जाकर कराऊँगा और और तू कहेगी, तो इस रेवती को भी तलाक दे दूगा '

लछिमा ने अपना रक्तहीन चेहरा हौले से उसकी ओर उठाया। उसके सूखे ओठ थोडे से थरथराये, खोखली आँखो की पलकें ऊपर को उठी और अब तक बँधा हुआ सारा पानी छलछलाता बह गया। रतनसिंह से इतना तीव्र प्रवाह सहा नही गया। वह बाढ मे बह गया-सा, एकाएक जोर से चीख-सा उठा—'अरी, निठुर औरत! कुछ तो बोल कि आखिर तू चाहती क्या है? मेरी मौत? मेरी लाश? या अपनी सौत रेवती की मौत⋯'

लछिमा ने काँपती कलाइयो को आपस मे जोडा। प्रणाम करते में उसकी कमजोर क्षीण उँगलियाँ जैसे आपस मे ही टकरा गइ। रतनसिंह को लगा,

लछिमा की उँगलियो तक से पानी ही फूट रहा है और वह इस जल-प्लावन के बीच असहाय हो गया है। उसका सारा नशा उड गया था।

पति को हाथ जोडने का प्रयास करती लछिमा ने, धीमे से रतनसिंह का दायाँ हाथ पकड लिया। पलकें मूँदकर, कुछ देर यो ही चुपचाप आँसू ढुलकाती रही। फिर रतनसिंह का हाथ छोडकर, धीमे स्वर मे पुकारा—'रेवा '

'दीदी !' कहती रेवती, उसके एकदम समीप आ गई। जानकी को उसने गोद मे पकड रखा था। लछिमा ने पहले रेवती और जानकी के मुह पर हाथ फेरा। फिर एकदम शात स्वर मे बोली—'बहना, मेले-त्योहार आयेंगे। मह तारी वाली छोरियाँ रगीन बेलबूटे वाली झगुली पहनेंगी। तू इस अभागिनी छोरी को भी जरूर रगीन झगुली पहना देना। इसकी लटी करके, रगीन फुने लगा देना। महीने महीने इसका सिर कटोर कर जूँ मार दिया करना। बहुत पुण्य मिलेगा तुझे। बडी भागवान बनेगी तू। भगवान तुम दोना को हमेशा सुखी रखेगा। सासू, माँ की जगह हुइ, उलट के जवाब कभी भूलकर भी नही देना '

टूटी-टूटी सी लय म अपना कहना सुनना समाप्त करते-करते ही, लछिमा का स्वर धीमे धीमे जाने कहाँ को ओझल होता गया। सास ने लपककर, उसके सिर को अपनी गोद मे रख लिया। अत्यत ही मर्मविदारक स्वर मे चीख उठी बुढिया—'लछिमा, चेली, तू मत जा मुझे जाने दे" लछिमा, तू मत जा"" '

लेकिन जाने कौन, काल की भाँति वही उपस्थित सा, सब कुछ सुनता और गठरी बाधता सा सबके देखते देखते ही नदारद होता गया।

रेवती बुरी तरह रोने लगी। रतनसिंह भी अब सारे बाँध तोडकर, बच्चो की तरह रो पडा। अब तक हाथ मे सभाली बर्फी की पुडिया खुलकर, नीचे गिर गई।

अचानक ही कुछ चमत्कार सा हुआ। प्राण त्याग चुकी प्रतीत होती सी लछिमा मे एक मद्धिम सा कम्पन हुआ और उसने काँपते हाथ से एक टुकडा बर्फी का उठाया। बायें हाथ से रतनसिंह के आँसू पोछकर और दायें से बर्फी का टुकडा उसके मुँह मे भरते हुए, धीमेपन की हद तक धीमी आवाज मे बोली — *तुम तुम शराब पीना छोड देना, हो !'*

"और एक बार फिर उसकी आँखें एकबारगी ऐसे छलछला गईं, जैसे पानी से भरे तिमिल के पत्तो के दोने के जोडो पर लगी सींक किसी ने एका एक ही निकाल ली हो और और पत्ते पानी के बहाव मे धरती पर फैल गए हो। ● ●

ऋण

सब झूठ भरम का फेरा रे-ए-ए ए
माया-ममता का घेरा रे-ए-ए ए
कोई ना तेरा, ना मेरा रे-ए ए ए

नटवर पण्डित का कण्ठ-स्वर ऐसे पचम पर चढता जा रहा था, जैसे किसी बहुत ऊँचे वृक्ष की चूल पर बठा पपीहा, चोच आकाश की ओर उठाए, टिटकारी भर रहा हो—

बादल राजा, पाणि-पाणि पाणि बादल राजा, पाणि-पाणि और अपने बीमार बेटे के पहरे पर लगे जनादन पडा को कुछ ऐसा भ्रम हो रहा था कि, मरने के बाद, यह नटवर पडित भी, शायद, ऐसे ही किसी पछी-योनि मे जायेगा और पु नरक के किसी ठूठ पर टिटकारी मारेगा—ए ए ए ए

आधी रात बीत जाती है। गाँव के, वन खेत के कामो से थके लोग सो जाते हैं, मगर नटवर पण्डित का कण्ठ नही थमता। वन के वृक्षो और खेत खडी फसल को साँय साँय झकझोरती बनैली बयार, रात के सन्नाटे मे, फनीले सर्पों की जैसी फूत्कारें छोडती है। शिवापण की रुग्ण काया जैसे प्रेतच्छाया की पकड मे आयी हुई-सी थरथरा उठती है और वह बिलबिलाता, पिता की छाती से चिपक जाता है—बा—बा—बा

जनादन पडा का हृदय विचलित हो उठता है—"हे प्रभो, सतानसुख तूने मुझे दिया, ऐसा मेरे किसी सात जन्मो के शत्रु को भी न देना। मुझसे तो नटवर पडित भाग्यशाली पुरुष हुआ। माया ममता के घेरे से मुक्त, निश्चित चित्त से राम का नाम तो लेता है। सतति न होने का क्लेश भले हो, अपग-भाग्यहीन सतति जनमाने का सताप तो नही डँसता उसे।"

पिछले बरस तक नटवर पडित के पचम सुर के भजनो से जनादन पडा बहुत चिढते रहे। हर साल एक-न एक बच्चा जन्म लेता या विदा होता उनके घर से। जाने कितनी बार यही हुआ कि इधर लगभग आधी रात के समय जनादन पडा के घर मे सतति जन्म लेती, उस वक्त भी नटवर पडित के कण्ठ का स्वर पचम पर ही मिलता—और जब बीमार बच्चा दम तोड देता, दुखियारी पण्डितानी विह्वल कठ से विलाप करती, तब भी नटवर पडित का स्वर उस विलाप से जुगलबदी करता, मानो गिद्धो के पखो की डरावनी आवाज उत्पन्न करता छत पर उतरता। अगर कभी यह पूजा का समय होता और नटवर पडित शख बजाते, तो भी उसमे से बिल्लियो के रोने की सी आवाज ही प्रकट होती मालूम पडती।

"हे राम, इस असगुनिया रँडुवे का पाचजन्य नही फूटता!" सतति शोक से विह्वल जनादन पडा दोनो हाथ आकाश की ओर उठा देते—"किसी के घर सतति जन्मे, तब भी यह कुभागी एकदम चील की सी टिटकारी छोडेगा। शोक-सताप हो, तब भी इस असगुनिया का पचम सुर नही थमता। साक्षात अधम नर-राक्षस है ससुरा! न किसी का सुख सुहाता इसे, न किसी की पीर कचोटती। ऐसा अधम पुरुष जाने ब्राह्मण योनि कैसे पा गया? इसे तो म्लेच्छो के घर जनमना था।"

दुरगा पडितानी तो और भी सतप्त कण्ठ से नटवर पडित को कोसती—"अरे, इस एकछड लटठ मूसल को किसी का सुख दुख कहाँ व्याप सकता? चार चार औरतो को टोक चुका कसाई, फिर भी घर मे सतति के नाम पर, इसके गोठ की गैया के थनो मे भी दूध नही उतरा! सच पूछो, तो अतर का डाह ,जलाता इसे। चाहता है जैसे इसकी घरवालियाँ मसान का प्रेत बना गई इसे, ऐसे ही औरो की भी मर जाएँ। जैसे इसके घर मे कोई बालक नही, ऐसे ही सबके घर बजर-बीरान हो जाएँ। खुद पा नही सका, पराये सुख के शूल चुभते हैं। कैसी डरावने सुरो मे भजन गाता है, जैसे स्यापा करता फिरता हो। हे राम, उठा ले जाए इसको ही धो-पोछकर इसका यह आधी-आधी रात का विलाप!"

देवदार के एकदम घने बनो से घिरी घाटी मे महाकाल नागेश्वर का प्राचीन मदिर बसा है। महाकाल के भक्त चन्द्रवशी राजाओ ने आस पास के अनेक गाँव ब्राह्मणो को दान मे दिये। तब से नागेश्वर महादेव के भव्य मदिर के

उत्तर-पश्चिम वाले छोरो पर पडे पुजारियो के गाँव बसे हैं। दक्षिण पूव देवदारु की घनी वृक्षावलियो से घिरा है। जबकि आबादी बहुत कम है। थोडे मकान और उनमे भी एक फासला-सा। जैसे प्रकृति ही चाहती रही हो कि महाकाल की इस घाटी मे ज्यादा लोगो की बस्ती न हो। सदैव एक सन्नाटा विद्यमान रहे और जब हवा तेज चले, तो देवदारु वृक्षो का झूमना साफ साफ सुनाई भी पडे। नटवर पडित और जनादन पडा भी मृत्युजय महाकाल के वशानुगत पुजारी रहे है। सप्ताह मे एक एक दिन इन दोनो की बारी भी लगती।

उत्तर मे वृद्ध नागेश्वर, दक्षिण मे क्षेत्रपाल, पूव मे कोटेश्वर और पश्चिम मे दण्डेश्वर, महाकाल के रूप मे शकर के चार स्वरूपो की चौकियाँ लगी हैं यहाँ और घाटी के बीचोबीच स्थित है, बाल नागेश्वर का पुराण प्रसिद्ध सोनकलश मदिर 'नागेश दारुका वने' के अनुसार, महाकाल के एक ज्योतिर्लिंग की सस्थापना इस घाटी मे है। मदिरो से लगी, आकार मे नदी, लेकिन प्रकार मे अत्यत ही एक पतली पवित्र धारा बहती है, जिसके स्फटिक स्वच्छ जल मे किनारे के वृक्षों ही नहीं, बल्कि वनस्पतियो तक के प्रतिबिम्ब देखे जा सकते हैं।

श्रुति थी, कि महाकाल नागेश के मदिर मे रात भर दीपक हाथ मे लेकर दीपाचना करने से जन्म-बाँझ औरत भी पुत्रवती बनती है। नटवर पडित न-जाने कितनी बार शिवपुराण का वाचन पाठन और न जाने कितनी बार 'शिवस्तोत्र' का पारायण कर चुके। सहस्रो घृतबातियाँ दीपको मे बाली, मगर चार चार विवाह करने पर भी सतति नही जन्मी तो नही ही जन्मी। चौथी पत्नी से तो उन्होने रात्रिपयत की दीपाचना भी करवाई, मगर इस रात्रि जागरण के दूसरे ही दिन, वह उनका घर छोड किसी दूसरे पुजारी के घर बस गई और वहाँ उससे एक के बाद एक तीन बेटे हुए। जबकि नटवर पडित के यहाँ पाथर टूट के दो नहीं होने वाला मुहावरा भले ही घर-भर मे कूदता फाँदता रहा हो, सतति का आगमन दूर ही रहा।

श्रुति तो यह भी थी कि महाकाल मृत्युजय हैं। उनकी आराधना करने पर सतति सौ वर्ष जीवित रह सकती है। मगर जनादन पडा के घर मे सतति साल दो साल भी बडी कठिनाई से ही ठहरती। दो-तीन, चार-पाँच नही, पचीस वर्षों की अवधि मे पद्रह बच्चे हो चुके थे, मगर एक बारह वर्षों की एक कन्या अरुधती शेष थी और दो वर्षों का यह अतिम पुत्र, जिसे महाकाल शिव को समर्पित करके, नाम शिवापण रख दिया था जनादन पडा ने, ताकि इसे भी मृत्यु न उठा ले जाए।

तेरह तो बेटे-ही-बेटे जन्मे। कोई महीने दो-महीने, कोई चार महीने, कोई पांच महीने और कोई एकाध वर्ष जिया। संतति शोक में तिल तिल टूटते, आखिर पिछले वर्ष दुरगा पण्डितानी भी चली गईं। अंतिम साँस से पहले इतना कहते गई थी—'शिवापण के बाबू, अब दूसरी लाकर गोत वंश चलाने की उमर तो आपकी रह नहीं गई। कहने को तो मैं बेर की बल-जमी फली, मगर वैसी ही सूख भी गई। यह एक कच्चे सूत जैसा छोरा छोड़े जा रही और एक कन्या। कन्या तो पराये घर की धरोहर होती। उससे अपना गोत वंश नहीं चला करता। अब तुम रोज एक कलशी गंगाजल की मृत्युंजय महाकाल के ज्योतिर्लिंग पर चढ़ाना और महाकाल शंकर से प्रार्थना करना कि प्रभो, अंतिम संतति है। गोत-वंश बचाये रखना! गोत गया, तो सब गया। भृगु, भरद्वाज, जमदग्नि आदि ऋषि मुनियों का नाम भी आखिर आज तक गोत से ही चल रहा। श्राद्ध पर्वों पर भी पितरो मम गृह मम गृहे!' कहने वाले ही नहीं रहे, तो मनुष्य का चिह्न कहाँ रहा?''

तब शिवापण कुछ ही दिनों का था।

साल भर तक तो शिवापण पूरी तरह स्वस्थ रहा, मगर जैसे कोई अशुभ छाया कहीं से अचानक ही प्रकट हुई हो, इस वर्ष का सवत्सर लगते-लगते, उसे भी रोग ने घेर लिया। कभी सूखी खाँसी हो जाती। कभी पेट चल जाता। कभी अपच और कभी शीत। पिछले तीन महीनों से तो थोड़ा सा गाय का दूध भी कठिनाई से पचा पाता था। डेढ़ साल का हो गया, मगर चल फिर नहीं सकता। हाथ पाँव एकदम सूख से चले। माथे पर की नसें तन गईं। त्वचा बूढ़ों की सी हो आई। पेट बढ़ गया और ओठों की पपड़ियाँ सूख चलीं। अब आँखों की पुतलियाँ बिना जल के बादल-जैसी नीरस प्रतीत होने लगीं। यानी लक्षणों से देखें, तो शिवापण के बचने की आशा दिन पर दिन कुछ धुंधली ही होती जा रही।

अंतिम दीपक के बुझने की आशंका से ही आँखों में अंधकार छाने लगता और जनार्दन पंडा सोचते कि एक दिन बेटी अरुंधती भी विदा हो जाएगी और तब इस उजाड़ घर में, अकेले अकेले वो भी शायद नटवर पंडित की ही तरह पंचम सुर में भजन गाते आधी आधी रात जागते मसानघाट के प्रेतों की तरह भटकते रहेंगे—'सब झूठ भरम का फेरा रे ए ए ■ "कोई ना तेरा, ना मेरा रे ए ए ए ''

दुर्गा पंडितानी का कहना कानों में बजता रहेगा कि वंश उजड़ गया, तो घर की भित्तियाँ भी उजड़ गईं।

सोचते सोचते, जनादन पंडा की आँखों की पुतलियाँ जैसे फिर जल में डूब गईं। धीरे धीरे, जैसे कि ताँबे की कुनी[1] में जलघड़ी डूबती है—बूँद-बूँद, बूँद-बूँद!

जलघड़ी रीती कुछ, तो जनादन पंडा ने खिड़की से बाहर की ओर झाँका सूर्य देव क्षेत्रपाल धुरी की ऊँची चोटी पर देवदार वृक्ष का सहारा लिये हुए से ठहरे थे और उनका प्रभामण्डल देवदारुओं से भरे अरण्य में ही थम गया सा आभासित होता था। जैसे घाटी कहती हो कि आगे कहाँ जाओगे, यहीं विश्राम करो!

सूर्योदय और सूर्यास्त, दोनों काल के अद्भुत से बिम्ब बना देते हैं। सूर्य वही, लेकिन परिदृश्य भिन्न, तो छवियाँ भी भिन्न भिन्न हैं। दोपहरी को जो सूर्य सारी पृथ्वी को तपाता भासित होता, सध्या को वहीं अरण्य की गोद में स्थान खोजता। महाकाल की घाटी में काल और प्रकृति का सगम देखते ही बनता। अस्ताचल से लगे सूर्यदेवता भीष्म पितामह की तरह प्राण त्यागते-से मालूम पड़ते।

सूर्यदेवता अरण्य में ही डूबते से प्रतीत हो रहे थे। 'जय सोमनाथ! जय मृत्युंजय!' विह्वल होकर, जनादन पंडा ने अपने जुड़े हाथ घाटी स्थित महाकाल मंदिर की ओर झुका दिये।

सध्यपूजन तथा भोजन से निवृत्त होकर, पुन शिवार्पण के पहरे पर बैठ गये जनादन। जाने कब, किस क्षण सब-कुछ समाप्त हो जाय। एक त्रास सा हर क्षण उपस्थित रहता है भीतर कहीं चारों ओर, लेकिन आज शिवार्पण का खाँसना-कराहना थमा रहा, तो उनकी भी आँख लग गई।

एकाएक आधी रात में नींद खुली और खिड़की से बाहर झाँका, तो दिखाई पड़ा कि सहारक शिव की भूमि में कहीं कुछ तीव्र प्रकाश फैला पड़ा है।

'हे राम! कोई यात्रा तो नहीं आ गई?'—जनादन पंडा के मन में कपकपी सी उठी और उन्होंने अपनी भय विह्वल आँखें कृशकाय शिवार्पण के

---

[1] ताँबे का वह पात्र, जिसमें पानी भरकर घटिका रखी जाती है।

चेहरे पर टिका दी। शिवार्पण अभी सोया नहीं, मगर लगता था, जैसे वर्षों से जड़वत् पड़ा है। जनार्दन पंडा आतंकित होकर पुकार उठे—'अरुंधती !'

अरुंधती घड़ी भर पहले ही सोई थी। थककर चूर होती दिखी, तो जनार्दन ने उसे सुला दिया था—'तू घड़ी-भर निंदिया ले, बेटी ! शिवार्पण को मैं देखता रहूँगा।'

अरुंधती भी, अंतिम सहोदर की रुग्णता और पिता की व्यथा में घिरी रहती। शिवार्पण कभी अधिक अस्वस्थ हो उठता, तब रात भर जागती रहती थी। कल रात भी जागती रही। आज पिता के कहने पर सो तो गई, मगर एकदम निश्चित होकर नहीं। रह-रहकर नश्वर पंडित का तीखा सुर उसे भी बेधता रहता। पिता ने अचानक पुकार लिया, तो उनके स्वर के आतंक से अरुंधती एकदम अचकचाकर उठ गई और उसकी आँखें सीधे शिवार्पण के चेहरे पर टिक गईं—शिवार्पण !

लालटेन की रोशनी में उसका चेहरा जाने कब के मुरझाये फूल-जैसा श्रीहीन दिख रहा था। जैसे सारी सुगंध उड़ चुकी हो। उसमें देह का ढाँचा तो था, लेकिन प्राण के चिह्न अंतर्धान मालूम पड़ते थे। कुछ क्षण टकटकी बाँधे देखने के बाद, वह लगभग चीख-सी उठी—'क्या हो गया बाबू शिवार्पण को ?'

अभी तो "अभी तो कुछ ठीक ही जैसा था" कहते-कहते जनार्दन पंडा की आतंक भरी आँखें फिर मृत्युंजय घाट की ओर मुड़ गईं। वहाँ गैस के हण्डों की रोशनी में अनेक मानव आकृतियाँ छायाओं की तरह चलती फिरती दिखाई दे रही थीं। जनार्दन को लगा कि अरुंधती की आँखों में जो प्रश्न उभरा है, वह मृत्युंजय घाट में अर्थी पहुँचने नहीं, बल्कि शिवार्पण की मृत्यु की आशंका के कारण। उन्होंने खिड़की बन्द कर दी कि कहीं अरुंधती की भी आँखें श्मशान-घाट की ओर उठ गईं, तो डरेगी और डरे हुए का साथ बीमार बच्चों के लिये और भी बुरा होता है।

खिड़की बन्द कर लेने पर, जनार्दन पंडा ने शिवार्पण की ओर ध्यान दिया। अनुभवी होने के नाते, इतना उन्हें इत्मीनान था कि शिवार्पण ने अभी प्राण नहीं त्यागे हैं। अरुंधती का माथा सहलाते हुए, वो उसका ध्यान इस ओर से हटाने लगे कि शिवार्पण को कुछ हुआ है। साथ ही, धीरे-धीरे शिवार्पण की मुँदी आँखों को स्पर्श करते गए। तभी शिवार्पण की आँखों के पपोटे मकड़ी

के जाले मे फँसी मक्खी के पंखों की भाँति थरथराए और सूखे ओठ खडापडा-सा उठे—'बा-बा-बा'

घने अरण्य से भरी घाटी मे उसकी वह काँपती आवाज सन्नाटे को बिजली के कड़कने की तरह तोड़ती प्रतीत हुई जनार्दन पंडित को। एक अरण्य आदमी के भीतर भी तो है।

'अरुंधती, जरा दूध-बताशा बना ले तो। कण्ठ सूख गया होगा छोरे का।' —आर्द्र स्वर मे जनार्दन बोले।

अरुंधती ने उनकी आँखो के आँसू पोंछने को अपनी धोती का छोर बढ़ाया ही था कि उन्होंने उसका हाथ नीचे कर दिया। अरुंधती को लगा, शिवार्पण उसकी तरह स्वस्थ होता और वह शिवार्पण की जगह मरणासन्न पड़ी होती, तब शायद पिता की आँखों में यों आँसू न उमड़ते। उसे एकाएक याद हो आया कि माँ कहा करती थी—'जिनसे गोत-वंश आगे बढ़ता, पितरों की सद्गति मिलती, इहलोक परलोक मे तारण होता, वो अभागे तो ठहरते नहीं, मगर यह पराये घर की सौगात जो बेल-जैसी बढ़ती आ रही। आज कोई लड़का सात आठ साल का होता, तो आँखो मे सुख भरता '

अपने होने की निरर्थकता की अनुभूति मे, अरुंधती फफक फफककर रोने लगी। जनार्दन पंडा का स्वर कुछ तीखा हो गया—'क्यो री, अभी से विलाप क्या करने लगी तू? अभी तो प्राण छूटे नही छोरे क '

तो क्या वह सिर्फ इसलिए है, कि छोटे भाई मरें, तो विलाप करे आधी आधी रात? और कोई उपयोग उसके अस्तित्व का नही?

अरुंधती अपने को समेटती रसोई घर की तरफ चली गई, दूध-बताशा बनाने। उसका उठकर चले जाना, जैसे स्थान बना गया और उधर सामने थोड़े ही फासले पर के मकान से नटवर पंडित की आवाज और ज्यादा साफ सुनाई पड़ने लगी—ना तेरा, ना मेरा रे

जनार्दन पंडा का मन फिर तिलमिला उठा। उन्हें लगा कि नटवर पंडित ने दो पतले बाँस कंधो पर रखे हुए हैं और अपने एकांत घर मे, इस कोने से उस कोने, पाँव पटकता चिल्लाता फिर रहा है—राम-नाम सत्त है राम-नाम सत्त है राम-नाम सत्त है

'पंडा जी!' तभी बाहर से किसी ने पुकार लिया। पुकारने वाले की आवाज और समय के अनुसार, जनार्दन ने अनुमान लगा लिया कि जरूर कोई अभी-अभी नीचे घाटी मे पहुँची अर्थी के साथ का यात्री है।

'अद्य ओम् विष्णुर्विष्णुर्विष्णु नम परमात्मने श्री श्वेत वाराहकल्प वैवस्वत मन्वतरे अष्टाविंशतितमे युगे कलिप्रथमचरणे यजमान, जनेऊ बायी ओर कर ली है न ?' जौ तिल का तर्पण बडे बेटे के हाथ मे देते, जनार्दन पडा बोले। बोलते-बोलते ही, उनका मन तर्पण विधि मे हटकर, शिवापण पर चला गया—अभी तो शिवापण का यज्ञोपवीत-सस्कार भी नही हुआ ? दुरगा पडितानी की गति क्रिया तो उन्होंने कर दी, उनकी सद्गति कौन करेगा ? कौन अपने हाथो मे जौ तिल लेकर बायी जनेऊ करके 'पितृप्रेतो तारणाय' कहेगा ? गोदान, कालदान और स्वर्णदान करके उन्हें गोलोक भेजेगा ? जब सततिहीन ब्रह्मर्षि पुनरक म उल्टे लटकते रहे, तो उनकी न जाने क्या गति होगी ?

'तर्पण कराइए, महाराज ! चिता तैयार हो चुकी।' किसी ने कहा, तो जनार्दन पडा झेंप गय। अवसन्न कठ से फिर तर्पण कराने मे लग गए—'कलि जुगे कलि प्रथम चरणे, राक्षस नाम सवत्सरे दक्षिणायने '

हे राम ! कही अरुधती ने दक्षिण वाली खिडकी न खोल दी हो वहाँ से तो चिता की लपटें एकदम साफ दिखाई देती हैं। कही वह डर गई, तो शिवापण को भी ओचक न लग जाए ?

अनेका बार, इसी मृत्युजय घाट म जलती चिता के पास निर्विकार चित्त चित्त से बैठे-बैठे पिण्ड दान और तर्पण, कपोतबन्धन आदि करा चुके जनार्दन। कभी-कभी एक चिता का अग्नि शिलवाकर, दूसरी अर्थी के पास प्रेत कर्म निप टाने जाना पड़ा है। जागेश्वर के तिवाण (तीर्थस्थान) में अत्येष्टि स मोक्ष पाने दूर-दूर तक के लोग वृद्ध माता पिता को यहाँ लाते रहे हैं। कभी-कभी तो दो-दो तीन-तीन चिताओ की लपटो को निष्काम आँखो से देखते हुए विषादग्रस्त यजमानो का सात्वना देनी पड़ती कि नाशवान देह की अन्तिम स्थिति यही अवश्यम्भावी है। महाकाल मृत्युजय के इस तीर्थ म सद्गति पा लेने पर फिर मनुष्य को पुनर्जन्म की व्याधि नहीं भोगनी पड़ती। आत्मा शाश्वत है शरीर क्षणभंगुर।

नैनछिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक ...

"मगर आज जनार्दन पडा का चित्त एकदम उचाट हो रहा था। कुछ ऐसा लगता रहा कि देवदार के विशाल वृक्षों स घिरी घाटी म उनका बार-बार पुनर्जन्म हो रहा है और वैसे ही लगातार अकाल अंत की ओर अब पुनरक चारों ओर चिता की लपटों स घिर गया है। किसी ठूँठ वृक्ष पर

उलटा लटका उनका आत्म हृस हृदय विदारक विलाप कर रहा है—शिवापण शिवार्पण शिवापण

'अत मे, सब-कुछ शिवापण ही होना है, महाराज, आप सत्य वचन ही वह रहे हैं।' एक आदमी ने महाकाल के मन्दिर की ओर आँख उठाकर कहा, तो जनादन पडा फिर काँप उठे—तो क्या मेरा शिवार्पण भी? लेकिन उसे तो पहले ही शिवार्पित कर चुका ? हे राम !

महाकाल शिव की पूजा प्रतिष्ठा करते-करते, चतुर्थावस्था आ गई। मगर दुख जब भी घना होता, जनादन पडा के मुँह से 'हे राम!' ही निकलता। काश कि एक बार किसी पुत्र को भगवान श्रीराम को अर्पित किया होता ?

घृताहुति के साथ ही चिता मे लपटें उठने लगी, तो जनार्दन पडा ने घी स चुपडे हाथो को, जल्दी से पोछ लिया और इतना कहते, चल पडे—'यजमान, दाह-सस्कार की क्रिया निबटा चुका। कपोल-वधन के समय तक फिर आ जाऊँगा। घर मे अकेली कन्या और बीमार बच्चा है। जरा उनकी भी सुधि ले लू। ' '

श्मशान घाट से अपने घर की ओर की चढाई चढते मे, जनादन को लगा कि घुटना के जोड उतर गए। उन्ह कुछ भ्रम सा हुआ कि पीछे पीछे दुरगा पडितानी चली आ रही है, और उनकी पीठ के पीछे अब तक के दिवगत पुत्रा की कतार खडी है। और इसी कतार मे, थोडे-से ही फासले पर खडा है—शिवापण भी।

त्रास के मारे, उन्होने तेज चलना शुरू किया। कुछ दूर आगे निकल चुकने पर एकदम पलटकर देखा, तो हवा मे साँय साँय करते देवदारु वृक्षा की पाँतो से उनकी आँखें ऐसे ढक गईं, जैसे किसी ने घनी झाडियो से जलते दीपको को ढाँप दिया हो।

एक अज्ञात आशका से जनादन का हृदय काँप उठा—बालको के तो पूर्ण सस्कार नही हुए थे, उनका प्रेतयोनि मे रह जाना सम्भव था। मगर, शिवापण की माँ तो सुहागिनी, पति के हाथो सदगति पाकर गई थी, वह क्यो प्रेतच्छाया सी भटक रही ?

रात के सन्नाटे मे जगल और खेतो के किनारे के वृक्ष तक यही बोलते मालूम पड रहे थे—शिवापण ! शिवार्पण ! शिवापण ! जनादन को लगा कि जैसे चारो ओर, हवा नही, दुरगा पडितानी बिलखती भटक रही है तो

क्या बिना पुत्र के हाथो पिण्ड-काष्ठ पाये माता पिता का सचमुच कोई तारण नही होता ?

पुत्र मोह मे और अधिक अभिभूत हो उठे जनार्दन पडा। घर घाटी से लगभग फर्लांग भर दूर है—ऊँचाई की तरफ घुटना पर हाथ रख रखकर, चढाई चढते चले। घर के बाहर आँगन मे थमकर, हाँफते-हाँफते दीवार का सहारा लेकर कान लगाये खडे हो गए—शिवापण जीवित होगा, तो अरुधती की लोरी सुनाई देगी, और यदि समाप्त हो गया।होगा सब कुछ, तो उनके सामने पडते ही वह एक मर्मवेधी चीख मारेगी। और फिर करुण विलाप गूज उठेगा—शिवापण ! शिवापण ! शिवापण और उधर नटवर पडित अपने एकात मे बाँस कधे पर धरे भजन गा रहा होगा—राम नाम राम ' नाम"

एकाएक भीतर किसी बाहर के व्यक्ति का बोलना सा सुनाई पडा तो जनादन पडा आश्चर्य से अभिभूत हो उठे। उन्होने सुना, घर के अन्दर नटवर पडित बोल रहा है—'अरुधती बेटी, इस ससार सागर मे तो आखिर सभी-कुछ शिवार्पित ही होने वाला हुआ। तेरा भाई तो पहले ही शिवार्पित हो चुका, इसलिए यह जल्दी नही मरेगा। दीर्घायु प्राप्त करेगा।

'अरे निष्ठुर ब्राह्मण ! तू कब, कसे और क्यो आ मरा हमारे घर मे ?' —जनादन ने क्रोध से अपनी मुठ्ठियाँ भीच ली। नटवर पडित ने जैसे ठडे स्वर मे 'यह जल्दी नही मरेगा' कहा, उन्हे क्रोध मे लगा, यह घोषित करते भी इस शख्स की आवाज काँपेगी नही कि—शिवापण मर चुका है !

'हे राम, अशगुन क्षमा करना !' कहते हुए, जनादन ने अपने दोनो कान पकडे और अन्दर को चल पडे।

'अरे, भाई जनादन ! यो अरुधती बेटी को अकेली छोडकर कहाँ चले गए थे ? मसानघाट के सामने का घर। घर मे बीमार बच्चा पडा हुआ। ऐसे मे प्रेत कम निबटाने को नही जाना था तुम्हे भला ! अरे, मुझसे कहा होता, मैं चला जाता ! दान दक्षिणा मे जो कुछ मिलता, तुम्हे ही सौंप देता। मेरा खाने वाला ही कौन हुआ ?'

नटवर पडित का कहा एक एक शब्द कानो तक पक्षियो की भाँति उडता सा पहुँचा। जनार्दन पडा को लगा कि नटवर पडित की बातो मे उनके प्रति सवेदना भले ही नही, मगर प्रेत कर्म निबटाने पर मिलने वाली दक्षिणा-सामग्री का लोभ भी दूर ही है।

क्यो जनादन, यो काँप क्यो रहे हो भला ? अरे, तुम्हें कुछ ठड तो नही

लग गई ?' नटवर पंडित ने पूछा, तो पहले जनार्दन को कुढ़न-सी हुई कि आज की सी मनस्थिति में भला शीत कहाँ लग सकती है, लेकिन फिर अनुभव हुआ कि देह शायद, सचमुच काँप रही।

अरुंधती ने सहारा देकर बिस्तर पर लिटा दिया, तो लिहाफ ओढ़ाने पर भी काँपते रहे। कुछ बुखार-सा अनुभव हुआ। शिवापण को देखने की सुध भी नहीं रही। कुछ देर-बाद ज्वर थोड़ा टूटा, तो देखा कि नटवर पंडित शिवापण के सिरहाने बैठा झूम रहा है। सामने की दीवार पर उसकी गोखुरी चुटिया की छाया, रह रहकर, काले सर्प की तरह हिलती भासित हो रही थी।

भ्रमवश जनार्दन को ऐसा लगा, जैसे कोई यमदूत आकर बैठ गया है, शिवापण के सिरहाने।

'होत !' जनार्दन जोर से चीख उठे। उन्हें लगा कि अपनी ब्रह्मशक्ति से उन्हें प्रेत को भगाना है, मगर नटवर पंडित ने, बड़े आत्मीय स्वर में धीमे से 'अरे जनार्दन ! आज तेरे साथ कोई शिवजी का गण तो नहीं चला आया है ?' पूछा, तो खिसिया गए।

नटवर पंडित ने धीरे धीरे पुस्तिका-जैसी खोली और जाने क्या-क्या कहते, जनार्दन को मन्त्रविद्ध सा करते गये। एकाएक सुध आई, कि जजमानों को आश्वासन देते आये थे, तो बोले—'नटवर भाई, दाह-संस्कार तो करा आया था। अब उतनी दूर जाने की शक्ति नहीं। चिता निबटने को होगी। तू जरा कपोत बँधवा आता। दक्षिणा-सामग्री भी तू ही ले जाना ! मसान लोभ का स्थान नहीं। दान-दक्षिणा पर उसका ही हक हुआ, जो पूरी अन्त्येष्टि निबटाये।'

कई दिन बीते, जनार्दन का स्वास्थ्य दिन-पर दिन गिरता ही चला गया। धीरे धीरे, शिवापण के साथ, वो भी बिस्तर से लग गए। अरुंधती बेचारी और ज्यादा घबरा गई। आजकल नटवर पंडित जरूर आ जाया करते। अरुंधती को थोड़ा सहारा हो जाता। नटवर पंडित कभी-कभी खुद रात भर जागते और अरुंधती को सुला देते—'तू सो जा, चेली ! मैं तो दिन में नींद पूरी कर लूंगा। रात को तो उलूक पक्षी हुआ ! भजनों में ही रात काटने की आदत सी पड़ गई।'

अद्भुत लगता स्वयं को उलूक की श्रेणी में रखते हुए, नटवर पंडित का इतना खुलकर हँसना। बिस्तर पर पड़े जनार्दन को लगता, चूहे फुदक रहे हैं

आस पास। नटवर पंडित की छवि और अनुमान के विपरीत की हँसी से कुछ ऐसा भ्रम उत्पन्न होता, जैसे खुद रात ही खिलखिलाती हो।

कभी-कभी तो समय काटने को या भजन गुनगुनाने लगते नटवर पण्डित, या उपदेश देने। जनार्दन को दोनो ही चीजें अप्रिय लगतीं, मगर विरोध नही कर पाते। लेकिन फिर एक दिन नटवर पंडित के उपदेशो ने, जैसे एकाएक ही, उनके ज्ञान चक्षु खोल दिये और उन्हे यही विस्मय हुआ कि—हे राम, जिस नटवर पंडित को मैं मूख और निष्ठुर समझता रहा, असली ब्रह्म ज्ञान तो इसी मे निकला ?

हुआ या कि बात बात मे एक दिन, जनार्दन पड़ा का दुख अचानक फूट पडा और बच्चो की तरह बिलख पडे कि एक-एक कर इतने बेटे चले गए। पत्नी चली गई। जब-जब एक एक की सुधि आती है, चेहरे इकट्ठा होने लगते हैं आस पास और सब जीवन, मरण से भी कष्टकर लगता है। सतति शोक मनुष्य को कितना विदीर्ण कर देता, इसे कोई सततिवान ही जान सकता है। और अब कही यह शिर्वापण भी चला गया, तो

नटवर पंडित ने उनके सारे विलाप को सुना तो जैसे मुह से कान सटाकर, लेकिन जवाब मे कतई नहीं कहा कि तुम मेरे निस्सतान होने पर चोट कर रहे हो। उन्होने आसन-जैसा बाँधा और बोलते गए—'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' कह रखा है जनार्दन! बहुत सांसारिक माया ममता का जाल बुन रखा तूने अपने आस पास, इसी से बेहाल है। सतति मोह का जो मधु मक्खियो का जैसा छत्ता तूने अपने मे लगा रखा, पगले, तू नही जानता कि दरअसल यह बर्रों का छत्ता ठहरा! शहद पाने के लालच मे ही तो डक शूल सहता तू? जीव ने तो अपना समय पूरा करके विदा होना ही हुआ, तू शोक कर, न कर। तुझे वृथा मोह हो सकता है, तेरे दुश्मनो को तुम पर दया क्यो आए ?'

नटवर पण्डित ने यह भी कहा—'तू समझता है, नटवर पण्डित मन का निष्ठुर है। किसी के जन्म मरण के सुख-दुख इसे व्यापते नहीं। मगर एक समय तक मैं भी तेरी ही तरह माया के जाल मे फँसा, सतति मोह मे तड़पता रहता था। मगर जब से असली ज्ञान पाया, आत्मा को शिवलिंग की तरह कठोर बना लिया। वर्षों तक जलाभिषेक करने पर भी शिवलिंग कोरे-का-कोरा ही रहता। शिव को इसीलिए मृत्युंजय कहा है, जनार्दन! जिस पुरुष ने चित्त कठोर बनाकर, सतति मोह से अपने को मुक्त कर लिया,

वही मृत्युंजय पुरुष बन जाता, क्योंकि मोह ही तो मृत्यु है। माया मोह जिसे न हो, उसे ही मृत्यु का भय-क्लेश भी नहीं व्यापता। स्वामी करुणानंद जी का प्रवचन भूल गया तू ? क्या कहा था उन्होंने ? शरीर को हम अपना समझते हैं—शरीर हमें अपना नहीं समझता। ये मेरे हाथ, मेरे पाँव, मेरे आँख कान हम कहते फिरते—इनको कभी कहते सुना कि तुम हमारे हो ? सनातन सम्बंध उस अनादि परमात्मा का हुआ जनार्दन, संतति का सम्बंध नहीं। संततिशोक छोड़ो। सामने रहे तो भी मानो, कि हम भले ही इसको अपना कहें, हकीकत में तो यह भी उसी परमपिता का, जिसके हम !'

नटवर पण्डित ने एक पुराण-कथा भी सुनाई—'सुन, जनार्दन ! एक समय एक ब्राह्मण के घर में एक-एक कर, सात सुंदर-स्वरूपवान बच्चों ने जन्म लिया, मगर सब अल्पायु में ही मरते चले गए। वह ब्राह्मण था शिवभक्त। संतति शोक से विह्वल हो शिव की कठिन तपस्या शुरू कर दी। महाकाल ने उसे दर्शन दिये और वरदान माँगने को कहा, तो ब्राह्मण ने कहा—'मुझे अपने सातों पुत्र चाहिए प्रभो !' तो, भाई जनार्दन, शिवजी बोले—'तथास्तु !' और उस ब्राह्मण को लेकर पहुंचे यमलोक। वहाँ एक वृक्ष पर उन्होंने ब्राह्मण को अपने साथ बिठा लिया कि अभी थोड़ी देर में तुम्हारे बेटे यहीं आएँगे। थोड़ी देर ध्यान पूर्वक और धैर्य के साथ उनकी बातें सुनना, फिर साथ ले जाना। सुन रहा है, भाई पुराण कथा ?'

'सुन रहा हूँ पण्डित !'

'तो सुन ! थोड़ी ही देर के बाद, वहाँ पर एक एक कर, ब्राह्मण के सातों पुत्र इकट्ठा हुए, तो आपस में बोलने-बतियाने लगे। सब उस ब्राह्मण को गाली देते और हरएक यही कहता कि—क्या करूँ, मैं तो ज्यादा बचा ही नहीं, नहीं तो पूंजी के साथ ही ब्याज भी वसूल कर लाता। ऐसा रुलाता ब्राह्मण को कि भूल जाता बनिये का ऋण मारना। क्यों सुन तो रहा है ना, जनार्दन ?'

'कहते जाओ, नटवर !'

'उन सातों में एक भी ब्राह्मण नहीं ठहरा। कोई सूदखोर बनिया, तो कोई चांडाल। कोई कुछ और। सब इस बात पर अट्टहास करते कि—यारो, जब मैं अपने ऋण वसूलकर, लौटने की तैयारी में था, तो मूर्ख ब्राह्मण मुझको मरता हुआ समझ, अपने कलेजे से लगा लगाकर, 'हाय मेरे पूत, हाय, मेरे प्राण !' बिलखता और दुख से विलाप करता था। कहता था—हे राम, मेरे प्राण ले लो, मगर बालक को मुझसे मत छीनो ! और मुझे उसकी मूर्खता

पर रह-रहकर हँसी आती। ऐसे ही प्रत्येक अपनी वसूली की कथा सुनाता और फिर सब एक साथ ठहाके लगाते। तो, भाई जनादन, अत मे उस ब्राह्मण को भी यही ज्ञान प्राप्त हुआ—अरे, जिन ससुरो को मैं अपना बेटा समझता था, ये तो सूदखोर बनिए और चाडाल निकले! बस, तब से उस ब्राह्मण ने मिथ्या माया-ममता के जाल से अपने को मुक्त कर लिया और महाकाल की सेवा मे लग गया। अत में उसे परमधाम की प्राप्ति हो गई।'

'लेकिन नटवर पण्डित बिना पुत्र के हाथा पिण्ड काष्ठ पाये परमधाम कैसे मिल सकता भला?'

'जिन पुत्रो के जीते जी नरकधाम मे रहना पड़े, उनके हाथों के पिण्ड काष्ठ से परमधाम की प्राप्ति कैसे हो सकती, जनादन? परमधाम की प्राप्ति का एकमात्र उपाय हरि भजन है। तुझे भी यही समझकर सतोष करना चाहिए कि ससुरे जितने चले गए, सब सूदखोर बनिए थे। एक यह है, तो अगर सपूत न होकर, वही सूदखोर निकला तो ऋण उतरते ही यह भी चला जाएगा। एक जो दुरगा भौजी इन सूदखोरो का निमित्त थी, वह भी चली गई। तुझे अब, स्वय को ऋणमुक्त हुआ, ऐसा अनुमान करते हुए, हरिभजन मे चित्त लगाना चाहिए। तेरे मन का सारा शोक सताप स्वय छँट जाएगा। सत तुकाराम की शादी हुई, तो कहा, रोटी बेलने वाली मिली—भजन को पूरा समय मिलेगा। पत्नी मर गई, तो बोले—समय लेने वाली गई, अब पूरा समय भजन को है। देख, यह बेटी ही तेरा सच्चा धन है। कन्या के हाथो का जल, पुत्रो के पिण्ड काष्ठ से ज्यादा पवित्र होता है, जनादन! मगर मोह ज्यादा इसके प्रति भी मत रखना, क्योकि धन चाहे सच्चा हो, या झूठा, जाने का शोक व्यापता जरूर है। सत्तर की उम्र होने को आई तेरी भी। जीवन पर्याप्त हुआ। साल-दो साल मे बिटिया के हाथ पीले करके खुद भी चलते बनो, तो इसमे शोक क्या है?'

कहना पूरा करके नटवर पडित ने फिर ठहाका लगाया था—'मैं खुद उधर चलने की तैयारी में ही तो रात भर भजन गाता कि गाते-बजाते चलो। गाते गाते चल निकला। धाम वही, जो सदा को है। यहाँ काल के आधीन रहना है। यहाँ मुक्ति कहाँ है'

बस, उस दिन से जनादन पण्डा की विह्वलता भी छँटती गई। देह तो नही सँभल सकी, मगर चित्त शात हो गया। अब शिवाधण के प्रति भी मोह कम हो चला और आखिर आखिर जनार्दन हरि का नाम लेते परमधाम

को चल दिये। हालाँकि विवाह तो नहीं हो पाया उनके जीवित रहते, मगर वाग्दान करते गये।

शिवापण के बारे मे जाति बिरादरी के लोगो का यही विचार था कि यह शिवार्पित बालक शिव की तरह ही संहारक सिद्ध हुआ है। अब तो माता-पिता भी मर चुके। ऐसे संहारक और रुग्ण बालक को कौन आश्रय दे? सभी समझते कि जब तक जियेगा, अरुंधती ही सँभालेगी। मगर एक दिन अरुंधती भी छोडकर ननिहाल भाग गई। उस आतंक भरे घर मे मरणासन्न शिवापण के साथ अकेले रहने की ताब उसमे नही थी।

मगर शिवापण नही मरा। अरुंधती के भागने के बाद, लोगो की आँखो मे फिर यही प्रश्न उभरा—अब कौन सँभालेगा इसे? लेकिन जब तक मे अरुंधती ननिहाल से किसी को साथ लिये लौटती, शिवार्पण को नटवर पंडित अपने घर उठा ले गये। लोग चकित कि यह अजूबा क्यो घटित हुआ।

अरुंधती मामा के साथ लौटी, मगर नटवर पंडित ने शिवापण को वापस नही किया। बोले—'इस अपंग का तुम लोग क्या करोगे? फिर यह अरुंधती भी तो वाग्दत्ता ठहरी। तुम मामा हुए, पितृतुल्य ही ठहरे, तुम इसके विवाह की सोचो।'

इस घटना के कई एक दिनो के बाद की बात है। नटवर पंडित शिवापण को बाहर धूप मे लिटाकर, उसके कमजोर पाँवो की तेल-मालिश कर रहे थे कि गाँव के कई लोग आस पास जुट आए और कौतूहल भरी आँखो से घूरते रहे।

नटवर पण्डित ने उनके मंतव्य को भाँप लिया। और तेल मालिश से निबटकर, आस-पास इकट्ठा हुए लोगो की जिज्ञासा को इन थोडे से शब्दो मे ही शान्त कर दिया—'यारो, आँखें फैला फैलाकर क्या ताक रहे हो? गोद ले लिया है मैंने शिवार्पण को! खुद के हिस्से का ऋण उतारकर, जनार्दन चला गया! अपने हिस्से का ऋण अब मुझे उतारना है!'

• •

वीरखम्भा

काँसे की नेगाली फर्शी, उस पर चढा जालीदार हुक्का और पीतल किनारी की लबी नली, सभी कुछ एकबारगी कँपकँपा उठे। काँसे के पनौटे पर फैली थोकदार भजतासिंह की उगलियो को कुछ ऐसी दाहक अनुभूति हुई, जैसे हुक्के पर के लाल लाल अगारे पनौटे तक उतरकर, उगलियो की पोरो से चिपक गए हो।

'कमलावती ! थोकदार भजतासिंह ने जोर से पुकारा।

कमलावती बयारलगी लता सी काँपती भजता थोकदार के और समीप चली आई। किसी अज्ञात आशका से उसे अपनी पीठ की डोर फिसलती लग रही थी। सुपियाली गाँव के थोकदार विकरमसिंह के आने की खबर भी तो वही लाई थी। इस थोकदार घराने मे आये कमलावती को पूरे पैंतीस बरस बीत गए और स्मृति मे से बूढे ससुर हनुमतासिंह की रौबीली आकृति का भराव अभी भी उतरा नही। आज उन्ही पराक्रमी बूढे ससुर हनुमतासिंह के पूत थोकदार भजतासिंह की काँसे के पनौटे पर अगार टटोलती उगलियाँ देख रही थी कमलावती और उसकी आँखो मे थोकदार हनुमतासिंह का इतिहास उभर रहा था।

खुद सुपियाली गाँव के थोकदार बिकरमसिंह ही कहा करते थे, पूत मे, परात भर खिलाने से पराक्रम नही आता। वह तो एक पितर परम्परा की देन होती है। खाने को तो सेर पक्के चावलो के भात मे से मैं भी एक ही ग्रास बलिराजा को न्योतने को छोडता हूँ, मेरे पिता की मुझसे भी अच्छी खुराक थी। मगर जो पराक्रम पौरुष थोकदार हनुमत चचा और उनके पूत भजतासिंह मे है, वह इष्ट देवताओ की एक अलग ही देन है। जसे थोकदार हनुमत चाचा की कमर की मसलौटियो की चमक उनके साँड के जूडे-

जैसे कधो तक चढती जान पडती थी, ठीक वैसे ही थोकदार भजतसिंह की कमर की डोरियाँ भी अपनी ठौर नही रहती हैं।'

उँचियाली गाँव की बनावट कुछ ऐसी है, तीनो ओर तो विकट ऊँची पहाडियाँ और चौथी ओर से आती थी, एकदम सँकरी सर्पीली सडक डिडुली। डिडुली उँचियाली गाँव की पहाडियो के गले मे एकपलिया जनेऊ-जैसी पडी हुई थी और जैसे जनेऊ कमर के नीचे तक पहुँचकर थम जाती है, ठीक ऐसे ही डिडुली सडक भी ऊँची-ऊँची पहाडियो पर से गर्भिणी सर्पिणी-सी उतरती, नीचे घाटी मे बहती नदी तक पहुँच कर ही विश्राम करती। जिस ठौर डिडुली सडक थम जाती है, वहाँ सुपियाली नदी का चौकोर पाट पडता है। सुपियाली नदी के उस चौकोर पाट के चारो ओर, सुपियाली गाँव के अलावा भी, कई गाँव और बसे हैं।

सुपियाली के तटवर्ती इन गाँवो से पिथौरागढ शहर बहुत दूर पडता और एकमात्र डिडुली सडक ही ऐसी थी, जो उन्हे शहर ले जाती। और वही डिडुली सडक उँचियाली गाँव के सिरान पयान होती जाती थी। उँचियाली गाँव के सिरहाने मुडमाला कापालिनी की ऊँची चोटी के पास पडता था वह आखिरी मोड, जहाँ से पिथौरागढ की ओर का इलाका पूरब की ओर, सुपियाली के तटवर्ती गाँवो का इलाका पश्चिम दिशा को पडता। गुलेल की बेंट के आकार का लगभग दो फर्लांग लम्बा यह मोड पहले बिकट मोड कहलाता था। अकेले दुकेले चलनेवाले भले ही न झिझकें, मगर जब कभी किसी दुलहन या किसी बीमार की डोली ले जानी पडती, इस ओर या उस ओर, मुडमाला देवी के मदिर मे साष्टाग दडवत करके भेंट चढ़ाने के बाद भी हिया काँपता ही रहता—हे मैया, तेरे गले की मुडमाला जैसा ही यह मोड भी विकट है। दया होगी, तभी काया पार पहुँचेगी।

बडे पुरखो का कहना था, जब रक्तबीज दैत्यो का वशनाश करके मैया कापालिनी कालिका हिमालय को लौट रही थी, तो उसके गले की मुडमाला इस ऊँची पहाडी पर गिर पडी। पहले इस पहाडी को पार करानेवाली कोई सडक नही थी। मैया कालिका की मुडमाला गिरी, तो ठीक उसी आकार की सडक वहाँ पर बन गई। पुरखे कहा करते, यह मुडमाला मैया का ही वरदान है कि सुपियाली के खडेश्वर घाट से पिथौरागढ अब सिर्फ उन्नीस ही मील पडता, नही तो सात मील का पगडफेरा और काटना होता था।

मगर मैया मुंडमाला के वरदान को कैलाश शम्भू के अखंड भगत थोकदार हनुमतसिंह ने, सुपियाली के साथ-साथ, अनेक दूसरे तटवर्ती गाँवों के लिये भी अभिशाप में बदल दिया।

हुआ यह कि खास सुपियाली गाँव के ही एक ठाकुर घराने की लड़की थोकदार हनुमतसिंह ने अपने एकमात्र पुत्र भजतसिंह के लिए माँगी थी, मगर कमलावती के पिता सबल ठाकुर ने पुरोहित वापस लौटा दिया। बचपन में ठने बैर के कारण।

हनुमतसिंह को लगा, आज उनकी कोबर साँप के फन जैसी बात-बात पर फनफना उठनेवाली लम्बी नाक सबल ठाकुर ने जड़ से ही रेत दी।""" पुरोहित के खाली हाथ लौटते ही उन्होंने बेटे भजता को भेज दिया—'जा रे, भजता! है मेरा पूत, तो बेटे, सुपियाली गाँव के सबल ठाकुर से सोने की नथ छीन ला। नहीं, कुल में कायर जन्मा है तो उचियाली गाँव की सीमा के बाहर जाकर सुपियाली में ही कहीं डूब मर।'

और "आज कमलावती देख रही है, अगर जस टटोलते भजता का वह तरुणाई का चोला। बहुत ज्यादा बँटे हुए रस्से-जसी देह थी तब भजता की। अपने आप ही बर बरें करती रहती थी। लगता था, सारी देह में मछलियाँ फड़क रही हैं। एक हाथ में फरसा लेकर, दूसरे हाथ से खेत-खड़ी कमलावती को खींच लिया था भजता न तब—'सुनो रे, सुपियाली गाँववालो! तुम्हारे गाँव से सोने की नथ खींचकर ले जा रहा। है तुम लोग को अपनी नाक की शरम तो आओ छीन ले जाओ। नहीं तो चुपचाप खेतों में धान गोड़ते रहो। असोज के महीने में बाल पकेगी तो बासमती की खुशबू लेकर सन्तोष कर लेना कि नहीं, अभी हमारी चमड़े की नाक तो मुँह पर ही है।

मगर खबरदार! जो आगे आवे, वह जरूर सोच ले कि भजता के फरसे की धार पर सूरज की किरन भी नहीं थिरती!'

इतना कहकर भजता ने अपने चौड़े फरसे को दोनों हाथों में पकड़ते हुए कमलावती को अपनी बायीं बगल में खड़ा कर लिया था—'तुम तो कुआरी कन्या हो और कन्या लक्ष्मी-सरस्वती मानी जाती। तुमको हाथ छुए में भी पाप है और पाप से पुरुषों का पराक्रम घट जाता।""मगर मेरे पितर का आदेश है सुपियाली गाँव के सबल ठाकुर की कन्या मेरे घर में बहू बनकर रहे। उन्होंने मुझे कुल वंश की शपथ सौंपी है, इसी से तुम्हें हाथ लगाया।

तुम्हारे बिरादर तुम्हें छीनने आयेंगे, मुझे उनका भय नहीं। ज्यादा से-ज्यादा मेरी गरदन ही तो जाएगी। मगर तुमने साथ नहीं दिया, तो मेरा पराक्रम पराजित होगा और पितरों की नाक कट जायेगी।'

इतना कहकर भजता ने अपनी जेब मे से मगल-सूत्र निकालकर कमलावती की ओर बढ़ा दिया था—'पितरो की लाज रखने के लिए प्राण होमने आया हूँ। वचन देता हूँ कि तुम्हें घर की लक्ष्मी का आसन दूँगा। बोलो, दुत्कारती हो या मेरे हाथ का मगल सूत्र पहनती हो ?'

अहा रे, आज उसी भजता थोकदार के पास खडी खडी सोच रही है, तो इस वानप्रस्थी उमर मे भी कमलावती के कपोलो मे दाड़िम फूटने लगे हैं। देखती ही रह गई थी तब थोकदार भजता की धूप मे तमतमाई रोबीली आकृति को ! हिया हिलुर उठा था, लाज और मोह से। मगल सूत्र के सोने का रग आँखो और कपोलो पर छा गया था। ना करते बना नही और उसकी हाँ सुनते ही भजता थोकदार के चौडे फरसे की धार मे जैसे हजारो सूरज उतर आए थे। मायके के खेतो मे खडे दो चार मर्दों की आँखें चुंधिया गई थीं—हनुमता थोकदार का बेटा है, आसानी से हाथ नहीं आयेगा। हाँक मार के ज्यादा जन इकट्ठे कर लो पहले, फिर घेरना।

सुपियाली गाँव के थोकदार बिकरमसिंह, यानी कमलावती के चचेरे भाई, का सदेश दूसरे दिन आया था—थोकदार हनुमत, मेरे गाँव की नाक की सोने की नथ उतार तो ले गया तुम्हारा पूत ! मगर इतना जरूर सोच लेना कि जो सोने की नथ छीनकर पहनी गई वह छीनकर ही उतारी भी जा सकती है ! एक अपने ही बल पौरुष का बहुत घमड मत करना। माँ के घुटने हम सुपियाली गाववालो ने भी नही पिये हैं। सात दिनो के अदर हमारे गाँव की सोनछडी हमे वापस नही मिली, तो तुम्हारे उँचियाली गाँव के खाटो के बुड्ढो से लेकर, गोद के बच्चो तक की कुशल मगल पूछने आ पहुँचेंगे !

'कुशल मगल पूछने' की बात से थोकदार हनुमतसिंह की सारी देह काँप उठी थी। जवाबी सन्देश दिया था—थोकदार बिकरम ! बेटे तेरा बाप अर्जुन थोकदार मेरी थाली मे खाने को उचियाली आता था और मैं उसकी चिलम मे तमाखू पीने तुम्हारे गाँव जाया करता था। आज तू उसी अर्जुन थोकदार का बेटा मेरे पितरो-पूतो की कुशल मगल पूछने आने की बात करता है ? सुन, बिकरम ! तुम्हारे सबल ठाकुर ने मान भरम से कन्या-दान नही किया। मेरे

पुरोहित को अपमानित करके लौटाया। यह मेरे सकल्प की बात थी, मेरे बेटे भजता ने उसके घर की लक्ष्मी अपने घर मे खीच ली। सतघरिया लक्ष्मी मेरी बहू नही। अपनी राजी खुशी से भजता के हाथ का मगल सूत पहनकर, मेरे घर मे आई है। तुम लोग बुला ले जाओ। राजी खुशी से कमला तुम लोगो के पास लौटना चाहती है, तो रोकूंगा नही। मेरा सकल्प तो पूरा हो चुका। मगर अपनी माँ की छाती के दूध का हवाला देकर, छीनकर ले जाने की बात करोगे, तो घर मे अपने बाल-बच्चो से कहते आना कि तुम लोगो का मुह आखिरी बार देख लें।

दोनो तरफ एक आग-जैसी लग गई थी। थोकदार बिकरमसिंह मुपियाली के तटवर्ती गाँवो के अपने बिरादरो को भी न्योत लाया था। पूरे सवा सौ छँटे-छँटाये बाँकुरे लट्ठ फरसे लेकर उँचियाली गाँव के सिरहाने पहुँच गए थे।

थोकदार हनुमतासिंह ने भी बिरादर जमा किये, मगर जुटे कुल पचास। आमने-सामने मोर्चा लग गया। सिर्फ एक खेत का फासला बीच म। दोनो जूथ अपने अपने मुखिया थोकदारो के आदेशो की प्रतीक्षा मे।

थोकदार हनुमतासिह ने माड लगी चौंसठफेरा पगडी पहन रखी थी और बहू का हाथ पकड रखा था। सबल ठाकुर दिखे, तो हनुमता थोकदार ने हाक मारी—'सबल ठाकुर, तेरे घर की शान की नथ मैंने घर मे नही छिपा रखी। पहले तू अकेला आ। बुला ले जा अपनी बेटी को। यह मेरे कुल की प्रतिष्ठा बनी है। अपने-आप उतर के तेरे साथ चली जाती है तो चुपचाप लौट जाऊँगा। नही जायेगी तेरे बुलाने पर तो तब तुम लोग लट्ठो के जोर से उतार ले जाना। कम से कम फैसला तो हो जायेगा कि माँ के घुटनो से भी दूध फूटा करता है, या नही।'

अपने भतीजे विकरम थोकदार के सकत पर सबल ठाकुर अकेले इस पार चले आये थे। कमलावती ने उनके पाँव छुए, तो बोले—'बेटी, इस बार तू बिना भरम के आई है, तो हमारे सारे इलाके की नाक कट गई। लौट चल मेरे साथ। मैं तुझे सोने से तोलकर अच्छी ठौर विदा करूँगा।'

कमलावती ने घूघट खीच लिया था—'पाप के वचन पिता के मुँह से शोभा नहीं देते, बौज्यू! भाँवरें सात फिराई जाती हैं मगर जिसके सहारे फिराई जाती वह लोक-लोकातरों के लिये एक ही होता। हाथ जोडती हूँ, लौट जाइये। आना होगा, तो मान भरम से आयें। अपनी घर गृहस्थी अपना

कुल छोड़कर अब मायके की ठौर को नहीं लौटूंगी। लौटूंगी तो उस दिन, जिस दिन मेरे भाई चैत के महीने मे न्यौतने आयेंगे।'

हनुमता थोकदार गद्गद् हो गए थे और उन्होंने कमलावती को बाँहों मे भर लिया था—'मेरी बहू बेटी, छोटी न होती तो तेरे पाँवों मे अपने सिर की पगड़ी रख देता, लाडली ! तेरे पाँव क्या पडे, मेरे कुल वंश उजागर हो गये, बहू ! तूने लाज रख ली हमारी, तो हम भी भूलेंगे नहीं। आज से तू मेरी बेटी भी हुई।'

आखिर सबल ठाकुर लौट गए, अपना-सा मुँह लेकर।

उधर से बिक्रम थोकदार ने फिर हाँक मारी थी—'हनुमत चचा, मान जाओ। आखिरी बार कह रहा हूँ। मेरे एक इशारे पर सवा सौ लट्ठ एक साथ टूटेंगे।'

हनुमता थोकदार कुछ क्षण तो उसे टकटकी लगाये देखते रहे और फिर एकाएक अकेले ही बिकरम थोकदार की तरफ दौड़ गये। थमकर, हाक मारी —'बिक्रम बेटे, सवा सौ लट्ठों का सहारा क्यों लेता है, रे कायर ! तेरा बाप अर्जुन थोकदार होता, तो मेरी तरफ के जूथ के आदमी पहले गिन लेता और अपनी तरफ के जूथ के पिचहत्तर लट्ठों को सुपियाली की तरफ ही वापस भेज देता। सुन मेरे बेटे, एक काम कर। मैं तेरी जोड़ का नहीं, तेरे बाप की जोड़ का हूँ। तेरे अभी मूछों मे सफेदी नहीं फूटी, मैं फूल-कर कपास बन गया। तू थोड़ा सब्र कर। मैं अपने उँचियाली गाँव की तल-हटी से एक पाथर-खम्भ उठाकर लाता हूँ। बिकट मोड तक वहाँ से डेढ़ मील की खड़ी चढ़ाई पड़ती। मैं पाथर को वहाँ ले जाकर खड़ा करता हूँ। तू सिर्फ उसे उतारकर नीचे तलहटी तक पहुँचा देना। बस, हार जाऊँगा अपनी कुललक्ष्मी को। नहीं तो, तू लौट जाना। बोल ?'

हनुमता थोकदार की हाँक पर सभी लोग यन्त्रवत् खड़े रह गए।

थोकदार बिकरमसिंह को ऐसा लगा, हनुमता थोकदार की चुनौती ने उसे काले सर्प की तरह लपेट लिया है। रोष मे बिकरम थोकदार की देह भी झनझना उठी—'मंजूर है, हनुमत चचा !'

और तब उस दिन देखा था सभी लोगों ने कपास-जैसे फूले हनुमतासिंह का, आँखों की पुतलियों को एक ठौर थिरा देनेवाला पराक्रम ! डेढ़ हाथ चौड़े, पाँच फुट ऊँचे पाथर-खम्भ को हनुमता थोकदार ने सिर्फ आठ दम ठौर ही थकान उतारकर, बिकट मोड के बीचों-बीच खड़ा कर दिया। उनकी देह की

नस नस ऐसे उभर आई थी, जैसे मछुआरे के द्वारा नदी में डाला जाल ऊपर उतार लिया गया हो।

विकरम थोकदार का आधा साहस तो पाथरखम्भ का आकार प्रकार देखकर ही टूट चला था। दोनों हाथों की कौली में भरकर उठाने लगा, तो एक-एक नस से पानी तो जरूर नितरने लगा, मगर पाथर-खम्भ नहीं उठा, तो नहीं ही उठा!

अंत में, लाचार विकरम थोकदार ने इतना ही कहा था—'सुनो रे, मेरे गाँव के लोगो बिरादरो! मुझ कायर की यहीं पर बलि देकर, तुम लोग लौट जाओ। लक्ष्मी को चौकी मिल गई, वह नहीं लौटेगी।'

सबल ठाकुर का कंठ भर आया था और अपनी बेटी की ओर मुट्ठी खोल कर 'जा, कन्या दान दिया।' कहकर, रोते हुए, घर को लौट गये। समझाने पर थोकदार विकरम भी लौटे। और पीछे से हनुमंता थोकदार ने भी हाँक मार दी—'विकरम थोकदार, कुछ भी लाज शरम होगी तुम लोगों को तो, आज से उँचियाली गाँव के रास्ते पिथौरागढ़ को मत जाना। तब तक नहीं, जब तक तुम्हारी सुपियाली पट्टी में कोई ऐसा पूत नहीं जनमता, जो मेरे रखे बीरखम्भे को यहाँ से उठा सके!'

'नहीं आऊँगा, चचा!' कहता विकरम थोकदार रो दिया था।

बात को आज बरसों बीत चुके। हनुमंता थोकदार के दिवंगत होते ही, उँचियाली गाँव की थोकदारी भजतासिंह के कंधों पर आ गई। थोकदारी के साथ ही पिता की चौंसठफेरा पगड़ी का भार भी।

और कुछ ही दिन पूर्व सुपियाली के थोकदार विकरमसिंह का संदेश आया—'भाई भजता थोकदार, पूरे पैंतीस साल बीत गए डिंडुली सड़क से पिथौरागढ़ नहीं गया हूँ और न गाँववालों को जाने दिया है। सात मील के फेरे लगाते हैं हम लोग, मगर हनुमंत चचा के बीरखम्भे को उठाने का सामर्थ्य नहीं जुटा पाए। अब मेरी भी उम्र ढलान पर आ गई। मेरे ही कारण डिंडुली सड़क की मेरी पट्टी के लोगों का गुजरना बंद हुआ था। मरने से पहले मैं डिंडुली सड़क की बंदिश खुलवा जाना चाहता हूँ! जब हनुमंत चचा थे, तब का जमाना दूसरा था। बुद्धि की जगह बल से काम होने में सुख मिलता था। आज हम लोग बल के साथ ही बुद्धि का जोर लगाकर आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे। डेढ़हथिया सँकरी डिंडुली सड़क चौड़ी होने लग गई। मेरी सारी पट्टी के

लोगो के हाथो का परिश्रम रग ला रहा । डिंडुली सडक अब नदी-जैसी फैल रही। जहाँ से अकेली देह सँभालकर चलना पडता था, वहाँ से डोली के आठ पाँव दनदनाते दौड रहे । मगर बिकट मोड पर खडा हनुमत चचा का बीर-खम्भा बीच रास्ते मे अडा हुआ है । एक नाते से तो तुम मेरे भाई लगते हो, दूसरे से जवाँई भी । मैंने कन्यादान के समय सोने की रत्ती ताँबे की कलशी नही दी थी । कमलावती बहन का ऋणदार रह गया । यह ऋण चुका रहा हूँ, मगर दूसरा इससे बडा ऋण सिर पर लेना चाहता हूँ । बिकट मोड का *वीरखम्भा तू मुझे दान मे दे दे, भाई ! उस वीरखम्भे के कारण मेरी* सुपियाली पट्टी के गावो के लिए पूरब दिशा रुकी पडी । मैं उस बीरखम्भे को एक मदिर मे स्थापित कर दूँगा । तू मुझे इजाजत दे दे कि सुपियाली पट्टी की चौडी सडक को उँचियाली गाँव के सिरान पयान तक पहुँचा दूँ । अब अंग्रेजो का राज नही रहा । खुलवाने को रास्ता हम कानून से भी चौडा करा सकते मगर जो रास्ता कानून से बद नही हुआ उसे कानून से खुलवाएँगे भी नही ।

मगर भजता थोकदार ने ललकार दिया—बीरखम्भा बिकट मोड पर से नही हटेगा !

और वही वीरखम्भा हटा दिया गया !

किसी ने अकेले उठाकर उँचियाली की तलहटी तक पहुँचा दिया होता, भजता थोकदार को कोप नही होता, मगर खबर आई थी, आठ आदमियो ने मिलकर उसे उठाया है । और भजता थोकदार की रोएँदार उँगलियाँ काँसे के पनौटे पर का ताप अनुभव कर रही थी । वीरखम्भे को हटवाकर बिकरम थोकदार खुद *यहाँ तक आ पहुँचे थे । कमलावती के हाथ ही उन्होंने सदेशा* भेज दिया था और भजता थोकदार के सामने खडी कमलावती आशका से थरथरा रही थी । साहस जुटाकर ज्यो-त्यो बोली— बिकरम भाई ने सोने की लडी और ताँबे की कलशी दे रखी मुझे ।'

'मुझे पता है, थोकदारनी ! मगर थोकदार भजतसिंह ने पितरो के मान की कीमत सोने की लडी, ताँबे की कलशी से नही चुकाई जा सकती । बिकरम थोकदार यहाँ से जीता नही लौटेगा अपने गाँव को । वीरखम्भे से पूरब की दिशा मे पडे उसके पाँव अब पश्चिम को हरगिज नही लौटेंगे, थोकदारनी !'

कमलावती ने यही सदेश दिया, तो भी वापस लौटने की जगह घर तक आ पहुचे बिकरम थोकदार । बोले— मैं लौटना भी नही चाहता, भजता

भाई ! मगर मेरी बलि तुम वीरखम्भे के पास ही देना, इतनी प्रार्थना जरूर है ।'

'ऐसा ही होगा, बिकरम थोकदार ! मेरे पितरों की शर्त तोड़कर बिक्ट मोड़ से इस पार आनेवाले पाँव पीछे नहीं लौटेंगे ! फाँसी से डरना सपूतों का काम नहीं ।' और लपककर, भजता थोकदार ने कानस में से गँड़ासा खींच लिया ।

कमलावती थोकदारनी एक ओर हट गई । वह जानती थी, थोकदार अब उसके रोके से नहीं रुकेंगे । आगे आगे भजता थोकदार जा रहे थे । उनके पीछे कमलावती थोकदारनी और दोनों बेटे, पीछे पीछे बिकरम थोकदार ।

बिक्ट मोड़ पर पहुँचते ही भजता थोकदार ने देखा—जहाँ पर वीरखम्भा था, वहाँ से उस पार आठ हाथ चौड़ी सड़क फैली है । मुडमाला मैया के मंदिर की सीढ़ियों तक सड़क कट गई थी । मंदिर के अहाते में ही वीरखम्भा स्थापित था, फूलों से लदा । वीरखम्भा जहाँ पहले था, उससे कुछ ही दूर सुपियाली गाँव के कुछ लोग फूलों सजी डोली लिये बैठे थे ।

थोकदार भजतासिंह को उन लोगों ने देखा, तो 'राम राम' करने लगे । बिकरम थोकदार पीछे छूट गए थे । भजता थोकदार ने एक बार पीछे मुड़कर देखा । फिर खाँडे की धार पर उँगलियाँ फेरते हुए कड़क उठे—'क्यों रे, सुपियालो ! यह फूलों से सजी डोली किसके लिए लाये हो ? थोकदार बिकरम की लाश ले जाने के लिए ?'

जवाब मिला—'यह डोली तो बिकरम थोकदार कमला ठकुरानी के लिए लिवा लाये, थोकदार ! बिकरम थोकदार ने कहा है कि 'भजता थोकदार राजी हो गए, तो कमला ठकुरानी की डोली यहाँ से सबसे पहले सुपियाली गाँव जायेगी । मान भरम से मायके की ठौर से विदा करेंगे, फिर अपनी घर-गृहस्थी में लौटेगी । इस हाथ भर चौड़ी डिंडुली सड़क से डोली चलती नहीं थी, कमला ठकुरानी को डोली की सेवा सबसे पहले मिलेगी, फिर हमारी पट्टी की सारी कन्याओं के लिए डोली का रास्ता खुल जायेगा । अगर कहीं भजता थोकदार नहीं माने, तो भी रीती डोली इसी मोड़ पर छोड़ जाना । सुपियाली पट्टी की बहू-बेटियों की ममता का शाप भजता थोकदार के सिर रहेगा । बिकरम थोकदार कह रहे थे कि मैं तो लौटूंगा नहीं । मेरी लाश हनुमंत चचा के वीरखम्भे के हवाले छोड़ देना । उनकी शर्त का कसूरवार मैं हूँ ।'

भजता थोकदार के कान सारी बातें सुन रहे थे, मगर आखें सँकरी से चौडी, सर्पिणी से श्रमवती बनी डिंडुली सडक पर ही अटकी थी। उनकी रोष भरी आँखो मे एक सुकोमल कल्पना झूल रही थी—अहा, इस चौडी सडक पर से कभी किसी दुलहन की फूलो-सजी डोली उँचियाली गाँव तक पहुचेगी, तो आँखो को कितना सुख मिलेगा ? दुलहन की फूल-डोली का रगीला फूल जिस दिन बिकट मोड के वीरखम्भे के पास फूलेगा, उस दिन हनुमता थोक्दार की आत्मा को कितना सुख मिलेगा कि—जिस सोने की नथ को मेरा भजता पाँवो-पाँवो भगाकर लाया था, आज उसकी डोली का फूल मेरे वीरखम्भे के पास फूला हुआ है !

सहसा, भजता थोकदार को ऐसा लगा, वीरखम्भे के पास हनुमता थोकदार की आत्मा खडी है और पूछ रही है—'भजता बेटे, मेरी ठकुरानी बहू की फूलो-सजी डोली मायके से किस समय लौटेगी ?'

भजता थोक्दार की आँखो मे मोह-ममता का एक भँवरीला बादल आर पार छा गया—भजता रे, वीरखम्भा जब खडा किया गया था, तब से फूल सजी डोलियाँ पश्चिम से पूरब को नहीं आईं। वीरखम्भा अब हटा दिया गया है, तो उसकी ठौर पर से न-जाने कितनी बेटियाँ डोली से बाहर झाँकती इसी मोड से गुजरेंगी !

कमलावती ठकुरानी और बिकरम थोकदार भी बिकट मोड तक पहुँच गए थे। बिकरम थोक्दार आगे बढ आए। बोले—'भजता भाई, पितर शत तोडने का अपराधी मैं हूँ। मेरी बलि देकर, मेरे पापो का प्रायश्चित करा दे। गाँव वालो को, बेटो को मैंने शपथ दे दी है कि खबरदार मेरी मौत का कसूर कोई तुम्हारे सिर पर थोपकर मुकद्दमा न लडे।" अगर हो सके, तो एक मेरी अतिम इच्छा जरूर पूरी कर देना। कमलावती बहन को डोली मे बिठाकर मायके को विदा जरूर कर देना। पूतो वाली हो गई, तो क्या हुआ—मायके वालों को तो बेटी ही हुई। मान-भरम के साथ उचियाली गाँव को डोली लौटा दी जायेगी, इतना विश्वास रखना।'

भजता थोकदार की आँखो का बादल फिरझिरा गया। बिकरम थोकदार को बाँहो मे भरते बोले—'कमला ठकुरानी एक दुलहन की तरह अपने मायके जायेगी, और तुम्हारे ही साथ जायेगी, बिकरम ठाकुर ! वीरखम्भे के पास खडी मेरे पितर की आत्मा अपनी बहू की लौटती डोली देखना चाहती। वीरखम्भा अब अपनी असली जगह पर पहुँच गया है। यह मेरा पितरखम्भा

है, बिकरम थोकदार ! जितनी चौडी सडक तुमने अपनी सुपियाली पटटी से इस वीरखम्भे के पावो तक पहुँचायी है, इससे भी दो हाथ ज्यादा चौडी सडक मैं अपने उँचियाली गाँव से यहाँ तक लाऊँगा। कमला थोकदारनी की डोली आज आठ पग चौडी सडक से मायके को विदा हो रही, तो उँचियाली गाँव की गृह-लक्ष्मी की डोली बारह पाँव चौडी सडक पर होती घर आगन मे उत-रेगी ! तभी यह वीरखम्भा, मेरा पितर खम्भा भी तृप्त होगा। कमला थोक दारनी के कारण ही वीरखम्भा रास्ता रोके खडा था। आज जब कमला ठकु रानी के लिए मायके की सडक खुल गई, तो ससुराल की सडक भी वदिश मे नही रहेगी ?'

● ●

घर-गृहस्थी

उम्र तो पकी हुई फसल-जैसी चीज होती है। साल दर साल कटती चली जाती है।

होते-करते परतिमा काकी को भी यह चतुर्थावस्था आ गई। यह भादो का हीला गीला महीना चल रहा है। अगला असोज का आयेगा। उधर खेतो मे धान की बालियो मे पीली रंगत आयेगी और इधर परतिमा चाची, तिरसठ्ठी पूरे करके, चौंसठ्ठी में पहुँच जाएगी। सिर पर अब पति की छाया नही, लेकिन भार तो पूरे कुटुम्ब का है।

लोग कहते हैं, चौमास के बाद नीर और पचास के बाद नारी मे ताकत नही रहती, मगर परतिमा ने साठी बरस पार करके भी हाथ पाँवो का बल नही खोया। खुली जमीन पर फैली कद्दू की क्षब्बरदार बेल-जैसा भरपूर कुटुम्ब, घर खेत-वन और गो-बछिया तक का कारोबार, मगर सारे गाँववालो के मुख से परतिमा चाची के हाथ पावा की बरकत के लिये यही वचन निकलते रहे कि करने को तो किसानो के कारोबार मे काम-काज सभी करते, मगर परतिमा चाची के हाथो मे एक अलग ही तेजी और बरकत है।

गाँव भर मे सबसे फैला फूला कारोबार ठहरा, मगर मजाल कि कभी जरा-सी भी अटक पड जाए। जैसा बल हाथ-पाँवो, वैसी ही मिठास सरस्वती मे। परतिमा चाची के बताये काम को 'ना' उसकी अपनी बहुओ के मुँह से क्या निकलता, अडोस-पडोस की औरतो के मुख मे भी यही बात होती कि 'इसमे तकलीफ की कौन सी बात है, सासू, आप जैसी सतनारी के मुख से जरा सा हुक्म हमारे लिये निकल ही गया, तो उसे पूरा करना हमारा फर्ज होता कि नही ?'

परतिमा चाची ने जिसके सिर पर हाथ रख के, मुख से मिसरी का कुजा-जैसा फोड दिया कि 'बहू, जैसी लाज तूने मेरे मुख के वचनो की रख दी, ऐसी तो कोई अपनी सगी सास की भी नही रख सकती। मेरी लाडली, हजारी-जैसी फले, बेर जैसी फल जाए तेरी गृहस्थी।' तो काम करनेवाली काम-का-काम निबटा गई और जाते समय, मेहनताना माँगने की जगह, पैरो पर हाथ अलग से रख गई कि—सासू हमे तो तुम्हारा आशीर्वाद चाहिये, बस।'

मुख की मिठास मे तो अब भी कोई कमी नही आई, बल्कि गुड पुराना पडता गया तो और गुणकारी सिद्ध हो रहा है मगर पिछले तिरसठवें बरस प्रमथी सवत्सर से कुण्डली में लगी शनि महाराज की चौकी ने ऐसा चक्कर खिलाया कि टीले पर से पाँव फिसला, तो फिर डोली मे ही घर पहुँची। कहाँ हाथ पाँवो मे, शरीर के अग अग मे ठण्डे पानी की मछली-जसी तेजी थी। कहाँ ठौर ठौर लगी चोटो ने लाचार कर दिया कि अब दूर के खेतो मे जाना तो दूर की बात ठहरी, घर समीप के खेतो मे ही जाना कठिन हो गया।

परतिमा चाची के हाथ-पाँवो का बल घटा, मगर कारोबार तो घटने की जगह और बढ गया। चार बेटो मे से छोटे सूरज सिंह को जान क्या तरग उठी, पलटन मे भर्ती हो गया। उससे बडा देवीसिंह पहले से ही दुकानदारी म लगा हुआ। तीसरा सोबनसिंह सहकारी स्टोर के काम मे लग गया। यही तो सोचा होगा कि सिफ खेती से घर की माली हालत ठोस नहीं रहेगी। परिवार बढ रहा है, तो कपडे-लत्ते वगैरह के बाहरी खर्चे भी बढते चले जा रहे।

सिफ चौथा, सबसे जेठा श्यामसिंह घर पर रह गया। तीन जोडी बैलो के हल की मूठें, हाथ मे लेनेवाला एक मगर चाची का जस काम आता रहा। कभी दो जाडी बैलो को हाँक, अडोस-पडोस के लोगो ने ही लगी दी और कभी परतिमा चाची के अहसानमद रिश्तेदार आकर मदद दे गये।

मर्दों के हाथ का काम तो यो सँभल गया, मगर पिछले दिनो औरतो के हाथ का काम कुछ ढीला पड गया। बडा कुटुम्ब। देवरानी जिठानियो मे कभी-कतार तू ता भी हो ही जाती। दूसरे, अपने अपने हाथ-पाँवो को आराम दना सभी को अच्छा लगता बडे कुटुम्ब मे, कि एक मैं ही थोडे हूँ काम करने वाली!

एक का आलस दूसरे को लगता है। मँझली बहू देवकी ने एक दिन, गोठो का मैल निकालने के बाद वन जाने से इकार कर दिया कि—पर्से खोदते-

खोदते तो मेरी कमर एकदम थक गई है अब वन जाकर घास काटना मेरे बस का नहीं।

कुछ दिन बाद छोटी बहू पारवती ने भी अपनी सबछोटी जिठानी भगवती के साथ खेतो मे पहुँचकर, धान निराने की जगह, पीपल की छाया मे बैठकर आराम करना शुरू कर दिया कि—एक हमको ही हाय-तोबा मचाकर अपने हाथ पाँव का नारायण तेल निकाल के क्या करना !

इधर चोमास की घर भण्डार मे ठौर खाली नही रहने देने वाली फसल पक कर तैयार हो गई। परतिमा काकी की अनुभवी आँखो को चारो बहुओ के ढीले पडे हुए हाथ पाँव दूर से ही दिखाई दे रहे। सबसे बडी मोतिमा रसोई के काम में ही सारा समय गुजार देती। देवकी को इधर नयी सतान हुई थी, वह उसको दूध पिलाते पिलाते खुद भी एक नीद निकाल लेती। दोनो छोटी बहुओ मे स एक का चौथा, दूसरी का पाँचवाँ महीना चल रहा था। खैर, इतने कम महीनो मे काम करते कोई कठिनाई तो आती नही, मगर इन दोनो का जोडा अभी से छाया मे हाथ-पाँव पसारने मे सुख पाने लगा था और गाँववालो की आखो के प्रश्न चिह्न परतिमा चाची की आखो मे जैसे शूल घुमो रहे थे—क्यो चाची, तुम्हारे खेतो की बालें तो पककर, झडने भी लग गईं, मगर अभी तक बटोरने की कोशिश नही की तुम्हारी बहुओ ने ?

अरे, ईश्वर ने परतिमा चाची को ऐसा फला फूला कुटुम्ब दिया है, तो थोडी-बहुत बुद्धि भी दे रक्खी है। डाँटने फटकारने से आजकल की बहुएँ और ज्यादा काम चोरी करती हैं। घर में कलह अलग से बढता है। सो, पिछले मगलवार से ही परतिमा चाची ने चारो बहुओ को अपने मुख से ऐसे वचन दिए कि जो फसल बीस बाईस दिन मे तिहाई भी नही सहेजी गई थी, वही पिछले सात आठ दिनो मे करीब करीब पूरी हाथ आ गई। सिर्फ कही-कही अधपकी पौध छूट गई बस !

गाँव घरो के लोग चक्कर मे आ गए कि कहाँ परतिमा चाची की फसल के खेतो मे ही झडने की नौबत आयी हुई थी और कहाँ एक-एक बाल बिनकर छत आँगन मे पहुँच गई।

गये मगलवार की ही बात है।

उत्तम प्रधान ने कलीदार चिलम मे लगी पीतल की नली से लम्बी नाक तक खीचा हुआ, खमीरा तम्बाकू का खुशबूदार धुआँ बहुओ की ओर छोड दिया था—'क्यो बहू, तुम लोगो ने अभी तक फसल पूरी नही बटोरी ? जरा

परतिमा भौजी की बहुआ का काम आज भी देखो जावे कि कैसे बिजली के बटन जैसे चल रहे उनके हाथ-पाँव ?'

हुआ चमत्कार यह था कि सवेरे-सवेरे बैठक के एक कोने मे लेटे-लेटे ही परतिमा चाची ने सबसे छोटी बहू पारबती को पास बुलाया—'पारबती बहू ! जरा इधर तो आ।'

मोतिमा उस समय रसोईघर मे थी। देवकी अपने दो महीने के बेटे विक्रम के कपड़े-लत्ते धोने गयी थी और भगवती पानी भरने। श्यामा कचहरी के काम से शहर चला गया था। पारबती भगवती के लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी, खेतो मे जाने के लिए। परतिमा चाची ने बुलाया तो 'क्या है, सासू' कहती पास पहुँची।

परतिमा ने उसे अपने पास खीचकर, उसका सिर अपने आचल मे ले लिया—'बहू, कल सपने मे मुझे मेरा सबसे छोटा छोरा सूरज दिखाई दिया। आज मगलवार। असाढ पलटन मे भरती हुआ था। भरपूर दो महीने ही पहुँचते अब उसको गए। कलजे मे कुरकुराहट-जसी लगी रहती। अभी तो मेरे सूरज की पूरी मूछ-दाढ़ी भी नही फूटी थी। कल रात के सपने में भी मेरी छाती से सिर लगा-लगाकर इजा, इजा कर रहा छोरा ! हे राम, तब से एक उदासी-जैसी व्याप गई मुझे। खैर, बहू ! अब तो मेरे लिए सूरज छोरे की जगह पर भी तू ही ठहरी। वैसे भी तो आँचल से भारी हुई तू। क्यो, बहू, कितने महीने पूरे हो गये ?'

प्रश्न पूछते-पूछते परतिमा चाची ने समीप ही रखे देवकी के बेटे के झूलने को झुला दिया था।

पारबती लजा गई थी। एक तो सूरज की सुधि के सदम ने उसके मन को व्याकुल कर दिया, दूसरे उसको शूल सी चुभती रही यह बात कि आँचल दिन-दिन भरपूर होता जा रहा। फागुन या चैत मे एक ठौर अलग बैठ जाना होगा। शरम की बात तो है मगर बालक तो आखिर होगा ही और निर्मोही पलटन मे भरती हो गया। पलटन से छुट्टी पर नही आया, तो बालक के नामकरण की चौकी पर कौन बैठेगा ?

पारबती की आँखें गीली हो आई। उसी समय परतिमा ने उसका मुह ऊपर उठा दिया—'अरे, ये मोती-जैसे क्यो बिखर रही बावली ? तू तो भाग-वान है। इस घर की लक्ष्मी है। कुछ ही महीनो के बाद तेरा आँचल दूध-पूत से भर जायेगा। मैं तेरे कोने मे बैठते ही सूरज के नाम तार डलवा दूँगी कि

वह फौरन आकर मेरी पोती के नामकरण के चौके पर बैठे। तू क्या जानती, बहू! मेरा बेटा बड़ा होशियार। देखना तू तेरे लिए ऐसे फैशनदार कपड़े लेकर आयेगा कि जिठानियाँ देखती ही रह जाएँगी! अच्छा बहू तू तो खेतों मे जाने की तैयारी कर रही होगी? कलेवा भी किया या नहीं?'

सवेरे सभी का एक साथ कलेवा मिलता है। कभी-कभी रात की पकी रोटियाँ, कभी कभी ताजी। रोटियो के साथ कभी छाछ, कभी थोड़ा-थोड़ा दूध और कभी सिर्फ नमक मिर्च। हाँ, घी दूध, गुड़ चीनी जैसी चीजें अभी तक सास के ही हाथो से बँटती हैं। घी-दूध की आलमारी के पल्ले परतिमा के अलावा और कोई नहीं उघाड़ता।

पारवती ने जिठानियो के साथ कलेवे की रोटी खा ली थी। परतिमा ने पूछा, तो सासू के प्यार से गदराकर 'कलेवा तो कर लिया, इजा!' कहकर, उसके पाँव दबाने लगी।

परतिमा ने सिर पर हाथ रख दिया—'लाख बरस की उमर हो जाय तेरी, बहू! जसी सुलच्छिनी है तू देख लेना, एक दिन भरपूर भण्डार की मालकिन बनेगी। सच, तू तो हमारे कुटुम्ब की साक्षात् लक्ष्मी है, क्या तेरा शील-स्वभाव है। क्या तेरे मुख का मीठा बोलना। मेरी छाती मे तो सुख के अंडे-जसे लुढकने लग जाते तुझे देखकर। सोने की नथ मे चन्दक जैसी, लाखो मे एक है तू, बहू! अरे, मेरी उमर भी काम-काज करते-करते, लोगो को परखते-परखते ही कटी। खेती किसानी के काम-काज मे जो फुरती और बरक्कत तेरे हाथ पाँवों मे, वह तेरी जिठानियो मे कहाँ? वैसे तो मेरे लिए पाँचो अगुलियाँ बराबर और तेरे लिए भी जिठानियाँ बड़ी ही ठहरी। उनका मान सम्मान तुझे करना ही हुआ। इसी मे तेरी शोभा भी ठहरी। मगर पुरखे जो कह गए कि चाम से काम प्यारा, कोई गलत बात तो नही कह गए।'

इतना कहने के बाद, परितमा ने समीप ही रक्खा दूध का गिलास उठाकर पारवती को दिया था और एक रोटी भी, गुड की डली के साथ। कहा था—'बहू, यह ले एक घूँट दूध पी, एक रोटी और खा ले। जिठानियो के साथ तो तुझे उनके बराबर ही कलेवा मिलता, मगर तेरी और उनकी बराबरी क्या? एक तो तेरा पति परदेश, औरो के समान पति का सुख नहीं। दूसरे, तू जितनी मेहनत से कामकाज करती, अब एक गास पेट मे भी ठीक से

नहीं आता, तो तेरे हाथ-पाँव चलेंगे कैसे ? और जैसी तू इस समय है, ऐसे में तो औरत को दूनी खुराक चाहिये। तब कहीं आँचल का दूध बढ़ता।'

पारवती सासू के प्यार से एकदम गद्गद हो उठी थी और दूध रोटी खाकर सीधे खेता की ओर चली गई थी—'माँजी, भगवती दीदी अभी पानी भरने से नहीं लौटी। कहती थी, खेतो में साथ-साथ चलेगी।' मगर मैं बेकार इतनी देर घर रुक के क्या करूँगी ? भगवती दीदी को तुम लगा देना। उसके खेतो मे पहुँचने तक तो मैं एक खेत की फसल काट लूँगी।'

थोड़ी ही देर के बाद, जब भगवती पानी की गगरी लेकर लौटी, परिसमा ने उसे भी अपने पास बुलाकर छाती से लगा लिया—'आ गई बहू, पानी भरके ? अभी अभी तो गई ही थी, पलक झपकते मे लौट भी आई। होने को तो मेरे लिए सभी बहुएँ एक बरोबर, और सभी अपनी अपनी ताकत के अनुसार काम भी करती, मगर जो फुरती और बरक्कत तेरे काम-काज मे, वैसी फुरती अगर तेरी देवरानी जिठानियो मे भी होती, तो आज मेरी खेती पककर खेतो मे ही नहीं झडती। अब एक बहू मोतिमा है। सबसे बडी जिठानी और घर के छोटे मोटे कामो मे ही रह जाती। देवकी बालकवाली बनी है, उसका भी आधा दिन गू मूत पोछने, दूध पिलाने मे ही निकल जाता। अरे, बालक क्या मेरे नही हुए ? आज तो तुम चार चार मौजूद हो। मैं तो अकेली घरिणी थी ? न पीछे देवरानी, न आगे जिठानी। खेती इतनी की इतनी ठहरी। मगर मजाल जो कभी पकी फसल की एक बाल भी बरबाद हो जाए। और आज यह हालत कि चार चार बटोरनेवाली हैं, मगर मल्ली बाखली के उत्तम पधान कह रहे कि अन्न मिट्टी मे मिल रहा। मगर तू अकेली क्या करेगी, बहू ! जितनी मिहनत तू करती, इतनी जो ये लोग करती, तो कुछ और ही रंगत बडी होती। खैर, तू ठीक कर रही है, जो अपनी ओर से काम काज मे रत्ती भर भी कसर नही कर रही। जसा तेरा शील स्वभाव, जैसी मिहनत से तू खेती का काम काज करती, मेरा तो देख देखकर हिया हरसने लगता।'

इतना कहकर बडे लाड से भगवती की खुली हुई लटी गूथनी शुरू कर दी थी—'तू तो हमारे कुटुम्ब की लक्ष्मी है, बहू ! तेरा मालिक भी तुझे-जैसा ही कारोबारी। चार टके घर मे आयेंगे, इसी लोभ से इस्टोर मे नौकरी करने लगा। बडा कुटुम्ब चलता भी तुम्ही-जसे लोगो से। या तो पेड के पछी, बिलो के चूहे भी अपनी अपनी घर गिरस्ती सँभालने ही वाले ठहरे।'

इतना कहकर, परतिमा ने आलमारी से दूध का गिलास निकाला था और गुड की डलीवाली रोटी भी। भगवती को थमाते, बोली थी—'ले जल्दी-जल्दी खा ले। अब सभी के लिए कहाँ से ले आऊँ मैं दूध-गुड, मगर तुझे एक गास ठीक से नही मिले, तो तेरी देह टूटती जाएगी। एक तो आँचल से भारी ठहरी तू उस पर खेती के काम-काज का रोला। रहे, काम काज का जहाँ तक सवाल है, जितनी मिहनत करो, उतना अपना शरीर चंगा रहता है। मैं तेरे सामने ही तो हूँ यही! जब तक खेतो मे दौडती फिरती थी, उत्तम पधान कहा करते कि—'परतिमा भौजी की जनम कुण्डली मे चितरगुप्त ने तिरसट्ठी काट करके, छत्तीस लिख दिया!' और अब चार महीने से लाचार पडी हूँ, तो जरा तेरे लिए दूध का गिलास आलमारी से निकालने मे ही पाँव दुख गया।'

और भगवती ने, दूध रोटी निबटाकर, परतिमा चाची का पाँव दबाना शुरू कर दिया—'कहाँ पर दुखता है, इधर? जरा तेल के हाथ से मालिश कर दूँ।'

परतिमा ने भगवती के सिर पर हाथ रख दिया—'लाख बरस की उमर हो जाय तेरी, बहू! आँचल दूध से, सुहाग-सिंदूर से सदा भरपूर रहे, यही मुझ लाचार बुढ़िया की दुआ। जैसी सेवा तू करती मेरी, ऐसी सेवा तो कोई बेटी अपनी माँ की भी नही करती होगी। तू तो इस कुटुम्ब की साक्षात् भगवती हुई, बहू! ले, तूने जरा हाथ फिराया नही कि दुख जाने कहाँ को चला गया? उठ करके, खूब इधर-उधर घूमने को मन कर रहा। अच्छा, अब तू जा, बहू! जाने को तो पारबती तुझसे भी पहले खेतो मे चली गई, मगर उसके हाथो मे तेरी जैसी फुरती कहाँ?'

और भगवती सीधे खेतो मे चली गई थी। उसने देखा, पारबती करीब आधा खेत निबटा चुकी थी। भगवती ने दूनी फुर्ती से बालो को बीनना शुरू कर दिया। उसका मन आज एकदम प्रफुल्ल था। जितना प्यार सासू मुझे करती हैं, उतना और किसी बहू को नही। वह उल्लास मे मायके का सीखा एक गीत गुनगुनाती गई—दाहिनी हो जाना, भौ नदा मइया, धान की इस फसल की तरह!

इधर देवकी आराम से अपने कपडे लत्ते धोकर घर लौटी कि—एक अकेला मेरा ही कारोबार थोडे ही है!

देवकी भी कलेवा करके गई थी। घर लौटकर, अब खेतो मे जाना था।

सास का भरम तो रखना ही पडता है। एक तो बेचारी वैसे ही लाचार पडी हैं। शाम को पूछेंगी—क्यो बहू, आज कितने धान काटे ?' तो रूखा-सूखा जवाब देने से पाप तो लगेगा ही, सासू का मन भी दुखेगा। हाँ, इतना जरूर कि अब ज्यादा हाय तोबा होने से रही। धीरे-धीरे सुविधा से जितना हा सकेगा, उतना ही तो कर पाएगी।

कपडे नीचे बाडे मे सूखने डालकर, देवकी आँगन मे आई। आले मे से दराती निकाली। फिर यह सोचकर अ दर की तरफ चली कि अब तो खेता से लौटने मे कुछ ज्यादा ही देर लगेगी, जाते-जाते बच्चे को जरा दूध और *पिला आऊँ। भूख लगती है, तो छाती मे दूध उतारने लगता है।*

बच्चे का झूलना अन्दर परतिमा के पास ही रखा हुआ। देली के पास पहुँची ही थी देवकी कि सास की आवाज सुनाई पडी।

परतिमा बडी बहू मोतिमा से कह रही थी—'तू तो साक्षात् लक्ष्मी हुई इस कुटुम्ब की। *सबजेठी है तू एकदम तन मन लगा करके इस कुटुम्ब का* कारोबार सँभाल रही। अरे मेरा श्यामू भी बिल्कुल तुझ जैसा ही। और भाई तो काई दूकानदारी मे फँसा, कोई नौकरी मे, तो कोई पलटन मे। मेरा श्यामी भी ऐसा ही करता, तो खेती तो चौपट हो गई होती। अब इस साल पकी फसल बरबाद हा रही। खेता का अन्न खेतो मे ही झड रहा। मगर तू अकेली *क्या-क्या करे ? सबेरे के कलेवे से लेकर रात की रोटियो तक* की रसोई तेरे ही सिर पर। घर के छोटे मोटे काम अलग से। फिर भी तू चन से कहाँ बैठने वाली। तेरा स्वभाव तो मैं जानती। जहाँ जरा-सी भी फुरसत मिली नहीं, तू खेतो म ही दिखाई देगी। तू तो मेरी साक्षात् अन्नपूर्णा बहू हुई। तेरा हाथ लगा नही कि फसल को घर पहुँचते भी देर नहीं।'

देवकी ने एक कोने से झाँककर देखा, तो गुस्से से तिलमिला उठी। उसे इतना साफ दिखाई पड गया कि परतिमा ने चुपके से मोतिमा को एक गिलास भरकर दूध दिया है और गुड की डली के साथ एक रोटी।

देवकी ने सुना। सास लगभग काना मे फुसफुसा रहे होने के अदाज मे *कह रही थी—होने को मुझे सब बहुएँ एक हैं, मगर दूध इतना कहाँ होता* है कि सब तक पहुचे ? और जहाँ तूने अपने हाथ पाँव ढीले किये नहीं कि देवरानियो ने भी पाँव पसार देने हैं कि जब सबजेठी को ही कारोबार सँभालने की फिक्र नहीं, तो हम क्यों अपनी जान मारें। पारवती और भगवती तो अभी वैसे ही लापरवा हैं। घर-गृहस्थी के कामो मे ज्यादा मन नहीं लगता।

देवकी है तो उसको यह नया-नया छौना क्या हुआ है, आधा दिन उसका इसी का गू मूत पोछते, दूध पिलाते बीत जाता है।'

देवकी से और ज्यादा नही सुना गया। सासू इतना फेर रखती है, बडी बहू और उसम! तिरस्कार की वेदना से उसकी आँखो मे आँसू भर आए। कही मोतिमा बाहर आकर देख न ले, इसलिए नीचे गोठ की ओर चल दी।

थोडी ही देर मे मोतिमा परतिमा के कमरे से निकलकर, रसोई घर की ओर चली गई, तो देवकी खेतो की आर बढ़ने लगी, मगर बच्चे के रोने की आवाज सुनी, तो लौट आई। दूध तो पिला ही दे। सासू तो उसे चुप भी नहीं करायेंगी।

अन्दर पहुँची, तो देखा—परतिमा ने बच्चे को अपनी गोद में रख लिया था। देवकी को देखते ही बोली—'इधर आ, बहू! तुझे तो अपने बालक का भी मोह नही रहता। बस दिन भर काम मे ही डूबी रहती।'

देवकी ने समीप पहुँचकर बच्चे को गोद मे लिया और दूध पिलाने लगी। परतिमा धीरे धीरे उठी। अलमारी खोली और दूध से लबालब भरा गिलास निकाला। गुड की डली और रोटी के साथ देवकी को देते, प्यार से डाँटती बोली—'ले, जरा अपने पेट मे भी तो डाल कुछ। तू ही एक गास नही खायेगी, तो आँचल मे दूध कहाँ से आयेगा?'

फिर देवकी के सिर पर प्यार से हाथ फिराते बोली—'काम-काज तो लगा ही रहता, बहू! मगर तू जरा अपनी देह और अपने बालक का भी मोह रखा कर। वैसे मैं तो तेरा शील-स्वभाव अच्छी तरह जानती। तेरे-जैसे छोटे छोटे बालकों वाली औरत तो खेती के काम काज से दूर दूर भागती। मगर एक तू है, अपने बालक को भी समय पर दूध नही पिला सकती। खैर, बड़े कुटुम्ब का कारोबार तुझ-जैसी बहुओ से ही चलता, बहू! क्या करूँ, तुझे आराम देती, मगर उधर खेतो मे अन्न की फसल पककर झड़ने लगी और इधर मैं अपने हाथ-पाँवों से लाचार पड़ी। सच कहती हूँ, बहू! जितनी मेहनत और फुर्ती से अपने बालक की चिंता किये बिना तू खेतो बटोरने मे लगी—अगर इतनी ही मेहनत पारबती, भगवती और मोतिमा करतीं, तो आज तक सारी फसल कट चुकी होती। अब मेरा मुँह क्या देख रही, बहू? जल्दी से दूध रोटी खा ले। सबके लिये मैं कहाँ से लाऊँ? मगर तेरा तो ध्यान रखना ही पड़ेगा। एक तो बालकवाली ठहरी तू, ऊपर से सिर पर पकी फसल बटोरने

का धौंसा " ले था तू तो मेरे बेटे की तरह हुई, बावली ! तुझ-जैसी बहू ही तो घर-गृहस्थी की शोभा होती । मैं तो"   '

बात काटते हुए, देवकी ने परतिमा काकी के पाँव पकड़ लिए—'नहीं, इजा ! घर गृहस्थी की शोभा तुझ जैसी बहू से नहीं, बल्कि आप जैसी सासू से बढ़ा करती !'

और शाम को घर की देली पर परम निश्चितता के साथ बैठी परतिमा काकी ने सभी बहुओं को सुनाते हुए कहा—अरे, घर-गृहस्थी की असली शोभा तो छत-आँगन में इकट्ठी फसल से बढ़ती ! इतना कहकर, हाथ में थमी चिलम गुड़गुड़ाते हुए, अब जो परतिमा न रुक, उड़ते पंछी-सा ठहाका लगाया तो हँसी देली के समीप की सीढ़ियों पर से उतरती, सारे घर आँगन में फैल गई ।

● ●

एक शब्दहीन नदी

'माई डियर हसा !

ले प्यारी, इस दफा तेरे ऑडर की मुताबिक, खुले पोस्टकारड की जगह पर बद इनलैंडलेटर लिखकर भेज रहा हूँ। हकीकत तो यही हुई कि लभ-लेटर जरा सेक्रिट किस्म की वस्तु ही हुआ। इसमे दिल की गहराइयो को उतारना ठहरा। खैर, अब इस मुहरबद चिटठी के आखरो को तेरे सिवा कोई दूसरा नही पढ़ सकेगा, प्यारी ! वैसे भी तेरे दिल मे छिपे मजमून के हरफो को एक सिर्फ मैं ही पढ़ सकने वाला ठहरा ! सामने वाली खैरातीराम अस्पताल की बडी घडी में छोटी सुई एक-दो ओ-करेक्ट तीन पर पहुँची हुई और बडी सुई चार, पाँच छै से सात पर। ऐसे नाजुक टैम मे मैं यहाँ अपने बौस की कोठी के बरामदे के फर्श पर बैठा हुआ '

लिखते लिखते, शकर सिंह के हाथ का 'होल्डर' अपने आप रुक गया। मगर हसा को यह पता चल गया कि उसका शकर सिंह रात भर बरामदे के फर्श पर बैठा रहता है, तो ? 'फर्श पर बैठा हुआ' को कई बार काटकर, शकर सिंह ने फिर लिखना शुरू किया—

मैं ऐसी नाजुक रात मे पलग पर लेटा हुआ बेचैनी से करवटें बदल रहा। सिर के ऊपर हरे नियोन बल्ब की रोशनी फैली हुई और दिल के अदर तेरी याद का बल्ब जल रहा।

'ओहो, इस समय तुम्हारे गाँव मे मइया अष्टभुजा के मदिर की पहाडी के आस-पास चद्रमा जल रहा होगा मगर तू तो खुद इस समय अदर सोई हुई होगी, क्यो डियर ? ज्यादा से ज्यादा तूने सोते समय मिटटी का दिया जलाया, मगर तेल ज्यादा जलने के डर से महतारी ने उसे भी साँझ साँझ ही बुझा दिया होगा ? यहाँ सबेरे-सबेरे तक हाई पावर बिजली के बल्ब जलते रहते मेरे बौस की कोठी में। अलबत्ता बारा एक बजे के बाद सिर्फ़

इस बरामदे मे हरा बल्ब जलता रहता, जिसके फश पर बैठा हुआ मैं इस समय तुझको यह इगलैंडलेटर लिख रहा। कल सवेरे ही इसको लेटरबोक्स मे ड्रौपिग कर आऊँगा, प्यारी। और कल सोला, परसो सत्तरा या नरसो अठारह तारीख जुलाई मयली तक तो यह लव लेटर तेरे पास तक जरूर पहुँच ही जाएगा। और फिर फस्ट अगस्त की रात की मेल बस से, जिसको कि पहाडी मे डाक की गाडी कहते लोग तो उसी डॉक गाडी से मैं खुद भी थुरू तेरे पास को रवाना हो जाऊँगा और सेकिण्ड सितम्बर की सुवेरे मुरादाबाद, फिर वहाँ से हलद्वानी मे चॅंजिग कर, रात को अलमोडा के किसी रॉयल होटल मे काट करके, थड की मौरनिंग मे 'वहाँ से भी थुरू रवाना होकर, गुड आफटरनून तक बानणी मइया की कृपा से तेरे पास पहुँच जाऊँगा जरूर।'

भावाकुलता के तीव्र प्रवाह मे, इस बार, शकर सिंह भूल ही गया कि पहले एक बार 'फश पर बैठा हुआ' काट चुका था। उसकी लेखनी आगे चलती रही—

डियर, मेरे लिए खास अपने हाथो से भात और दाल टपकिया पकाकर तैयार रखना। प्यारी, मन तो यही करता कि इसी वक्त सीधे, यहाँ से थुरू सफदरगज के ऐरोड्रम पर पहुँच करके हवाई जहाज से बाई एयरफोसिंग तेरे पास पहुँच जाऊँ, मगर मन की बेचैनी और तन की मजबूरी मे किसी कवि ने भी यही कहा कि—माटी तो यहाँ रही, मगर प्राण रहे पिया के पास। इसी सिलसिले मे एक दोहा किसी और कवि ने यह भी ठीक ही जैसा कह रखा ठहरा कि—बिधना गती ऐसी करी, आप बसे परदेश—हसा उडि उडि परबत जावे, धरि कागा का भेष। धीर कागा का भेष, रुलावे इन अँखियन को'

चिटठी पर गिरे आँसू शकर सिंह ने बडे जतन से पोछ लिये।

जब जब हँसा की याद आती है, लगता है, किसी ऊँची पहाडी पर से नीचे को झुकती गई घाटी मे से परदेश को जाते शकर सिंह को लगातार आवाज देता जा रहा है कोई। घर छूटे अब चार वर्ष हो रहे हैं, मगर घाटी मे शोर मचाती नदी-जैसी हसा की आवाज निरतर उतने ही वेग से आत्मा की गहराइयो म गूँजती रहती है। इस गूँज मे मायी पानी मे पडे नमक की

तरह घुली मालूम पड़ती है। जब जैसा चाहे शकर सिंह, तब वैसे शब्द छाँटकर अलग कर सकता है, लेकिन इसमे वक्त लगता है।

वेतन की रसीद पर सिर्फ 'दस्तखत शकर सिंह चौकीदार' लिखते मे ही अटक अटक कर आपस मे टकरा जानेवाली उँगलियाँ हँसा को लम्बी-लम्बी चिट्ठियाँ लिखते समय इतनी हलकी हो आती हैं कि लगता है, भीतर की गँज पोरो से फूटती चली जा रही है। शब्दहीन गूँज, जो पवता मे बीच से नदिया-जैसी बहती चली आती है। जब जब हसा याद आती है, आँखो की काली पुतलियाँ शिलाजीत की चट्टानो की तरह पसीजती मालूम होती हैं। जीवन पहाड हो जाता है।

जागते ए ए रहो-ओ ओ

उधर से डबलस्टोरी कॉलोनी के चौकीदार की बुलद आवाज रात के सन्नाटे को चीरती आई, तो मिस्टर अहलूवालिया का ऊपर के बरामदे मे सोया बुलडॉग भी जोर जोर से भौंक उठा।

होल्डर दवात एक ओर जल्दी-जल्दी सरकाकर, शकरसिंह उठा और टार्च-लाठी लिये बरामदे से बाहर निकल आया। चौकीदार की आवाज और बुलडॉग का भौंकना सुनकर मिस्टर अहलूवालिया अक्सर ऊपर के बारामदे मे निकल आते हैं। नीचे झाँककर शकर सिंह को चौकीदारी के वक्त मे चिट्ठी लिखता हुआ देख लें, तो शायद नौकरी से ही निकाल दें।

सम्भव तो यह भी हो सकता है कि वो नीचे उतरकर, शकर सिंह के हाथो से चिट्ठी लेकर, अपनी आदत के अनुसार, पूरे साहबी लहजे मे जोर-जोर से पढना ही शुरू कर दें? पहली ही पक्ति पढें—माई डियर हँसा! और तुरत बिगड उठें कि—ए पहाडी, क्या तुमको हमने यहाँ लवलेटर लिखने को रखा है बँगले पर?

इधर मिस्टर अहलूवालिया का अस्तित्व शकर सिंह के लिए ईश्वर से भी ज्यादा महत्वपूर्ण बन चुका है। अगले महीने, दो महीनों का अग्रिम वेतन और पन्द्रह दिनो की छुट्टी देने का आश्वासन उन्होने शकर सिंह को दे रखा है। जब से यह आश्वासन मिला है, शकर सिंह को समय अपनी आँखों मे तुलसी के बिरवे पर फैले कद्दू की बेल के जाल जैसा भारी लगने लगा है और इसे एकदम जल्दी-जल्दी हटाने के प्रयत्नो मे उसकी अतरात्मा तेज धप मे खूटे से बधे बधे उछल-कूद मचाने वाले लैरुआ बछडे की तरह हाँफ-हाँफ उठती है। समय व्यर्थ ही तोडे गये कद्दू के पत्तो की तरह हथेलियो

और आँखों पर फैलता, इन्हें ढँकता चला जाता है। एक-एक क्षण ऐसे
टूट के बीतता है कि पतझड में असख्य पत्तों से ढँके छोटे-से सरोवर-
लगने लगती है जिंदगी और गोता मारकर सतह पर फैले पत्तों को हट
मछली की तरह, शकर सिंह भी कहीं अपने ही भीतर डुबकी लगाने
विवश हो जाता है।

दूर-दूर तक देखने पर भी हसा की सूरत, काँपते ओठों पर रखी हथेर
जैसी, आखो की पुतलियो पर से परे हटाये नहीं हटती। इतने बडे दिल
शहर मे शकर सिंह को अपना अकेलापन काटना कठिन हो जाता है।
ऐसी वीरानी-सी अनुभव होती है कभी कभी कि आदमियो की बस्ती मे
घुघ्घू होकर रह जाता है शकर सिंह।

मिस्टर अहलूवालिया की कोठी मे आने से पहले, शकर सिंह, डब
स्टोरी कॉलोनी में चौकीदारी करता था और रात-भर जागता तमाम घ
मे कहीं ऐसी खाली जगह टटोलता फिरता था, जिसमे वह भी अपनी हु
को रख सके। और अगर कहीं ऐसा सचमुच सम्भव हो, तो सारी कॉलो
का एक चक्कर काटने के बाद 'जागते रहो जागते रहो' की पुकार लगा क
खुद भी हसा के पास आकर आँख मूदे सो जाने का आनद कितना ब
होता? मगर शकर सिंह के लिए सुख तो किसी मानस से भटके हस
तरह ऐंचोली के ऊँचे पर्वत पर ही छूट गया है।

हसा से ब्याह हुआ था कि तीसरे ही महीने गाँव से निकल आया। घ
मे सिर्फ दो छोटे भाई और विधवा माँ। अन्न तो ज्यों-त्यों जुट जाता खेत
से, मगर और कुछ नहीं। पहाड की उपराऊँ खेती बकरी की धिनाली[1] हुई
...और शकर सिंह चाहता कि उसकी हसा शहर की लडकियो की तर
नये-नये फैशन के कपडे पहन। ठहरी भी कितनी सुदर और कैसी मायावती
शकर सिंह कोई दाना-सयाना या बुजुर्ग तो नहीं ठहरा, लेकिन इतना जरू
अनुभव किया कि एक कुछ अद्भुत जैसी उम्र हुई। मन पछी हो जाने वाल
हुआ। कुछ ऐसी मनोदशा हो जाने वाली हुई कि जितना पछी आकाश म
उतना तो हम धरती पर ही उड रहे!

शादी से पहले शहर के एक होटल म नौकरी कर चुका था वह

१—दही, दूध, छाछ, मक्खन

और वहाँ घाट खाने को आने वाली कालेज की लड़कियों की रंग-बिरंगी पोशाकें उसकी आँखों पर से अभी भी उतरी नहीं। तब तो सचमुच ही उम्र कुछ वैसी हुई, जिसमें कि सपने और हकीकत के बीच फर्क कठिन होने वाला हुआ। शंकर सिंह छब्बीस-सत्ताईस का रहा होगा। हंसा उन्नीस वर्षों की ठहरी।

और शंकर सिंह चला आया कभी हंसा और माँ तथा भाइयों के लिये ढेर सारे कपड़ों से भरे संदूक लेकर घर लौटने का ऐसा सपना आँखों में बसाकर, जो लगभग उस हर पहाड़ी युवक की आँखों का सपना होता है, जिसे दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता और लखनऊ-कानपुर किसी माया नगरी से कम नहीं लगती। जगह जगह मोटे तागे से सी सीकर, टल्ले लगा-लगाकर पहने जाने वाले कपड़ों से उसे वितृष्णा सी होती और वह काले गाढ़े का घाघरा और मामूली किनारीदार धोती पहने चलने वाली हंसा को कल्पना के रंग बिरंगे लेडीज सूट या बढ़िया साड़ी-ब्लाउज पहनाकर अंदाजा लगाने वाला हुआ कि—देखें, अब कैसी लग रही। पिता के सिर पर न होने से, परिवार की चिंता भी उस पर ही हुई। पिता की मृत्यु के ही कारण तो शादी भी कुछ देर से हुई। इसीलिए, सिर्फ इसीलिए, वह अपने गाँव की उन सौंदर्यमयी घाटियों को हंसा की तरह ही पीछे छोड़ आया, जो हंसा के आने के बाद से स्वयं वधूवेश में सजी-सी मालूम पड़ने लगी थीं।

दो वर्ष तो कभी बेकार भटकने और कभी थोड़े रुपयों की नौकरी करने में ही बीत गए। लगातार दो वर्ष शंकरसिंह उन पर संकटों सिर धुनता ही रह गया, जिनके बीच मकड़जाले में मक्खी की तरह भिनभिनाते रह गया वह। दिल्ली के बड़े स्टेशन पर होटल की नौकरी करने के दिनों वह, बार-बार, संदूक और अटैचियाँ लेकर रेलों की ओर बढ़ते यात्रियों को देखता और शिलाजीत की चट्टानों में दरारें पड़ जातीं। सपनों की व्यर्थता को उन दरारों से लगातार छीजते देखते ही रह जाने के संताप में शंकरसिंह निराश होता गया। धीरे धीरे उसे यही अनुभव होने लगा कि ऐसे ही वर्ष पर वर्ष बीतते जाएँगे और हंसा हमेशा के लिए छूट जाएगी। जैसे दिल्ली पहुँचते ही हिमालय जैसा विशाल पर्वत ओझल हो गया, वह 'हूँहो, हूँहो' कहने वाली पहाड़िन भी सपना की सामग्री बनकर ही तो नहीं रह जायेगी? फटा-पुराना जैसा भी पहनती थी, आँखों के सामने तो रहती थी। अपनी औकात से बाहर के सपनों के व्यामोह में खुद शंकरसिंह ही उसे छोड़ आया और आज उसे हाथ बढ़ाकर छूना सपना हो गया।

जब परदेश से लौटकर, रेशमी साड़ियाँ वगैरह लाने की बात हुसा से कही थी, तब उसने उलटे यह उलाहना दिया था कि रेशम की तो तब जरूरत होती है, जब एक दूसरे के प्राणो को लपेटते चले जाने वाली भावनाओ के तार नष्ट हो जाएँ। मगर उतावला शकरसिंह उलाहने को झेल नही सका, उलटे चुनौती के रूप मे लिया कि शायद, हुसा समझती है कि उसके लिए रेशमी कपडे जुटा सकने की क्षमता शकरसिंह में नही। इस चुनौती को झेलते झेलते दो वर्ष बीत गए। एक चिट्ठी भी घर को नही भेज सका शकर सिंह। कई जवाबी पोस्टकार्ड जेब मे पडे पडे फटते चले गए।

पहली चिट्ठी शकर सिंह ने डबलस्टोरी कॉलोनी मे चौकीदारी मिलने पर भेजी थी। जवाबी पोस्टकार्ड के दोनो कार्ड लिख लिखकर भर दिए। फिर दूसरे ही दिन एक लिफाफा खरीदा और पिछले दो वर्षों मे झेले को, उसमे ड्रम मे भरे जाने वाले कूडे की तरह डालता गया। एक पत्र मे दिल्ली शहर मे आकर तरह तरह के धधो मे व्यस्त और फिर साझेदारी मे बिस्कुट नमकीन की दूकान खोलने पर उसमे बहुत ज्यादा घाटा हो जाने की बात भी उसने लिखी, इसलिए कि हुसा वास्तविकता से परिचित न हो सके। फिर एक बडे कारखाने मे हेड वाचमैन बन जाने की सूचना भी उसने दी। दिल्ली शहर की भव्यता का ऐसे चित्रण किया, जैसे किसी काल्पनिक इद्रलोक का वर्णन कर रहा हो। मूल मे तृष्णा इतनी कि हुसा यो न समझे कि शकर सिंह निकम्मा और अभावग्रस्त है।

पिछले वर्ष से ज्यो त्यो पचीस पचास रुपये महीने घर भेजने लगा था। दो-तीन बार कुछ कपडे भी भेजे। पहली बार सिल्क की साडी भेजते समय आवेग मे उसकी आँखें भर आई थी और वह केवडे के पत्ते मे अटके पानी जैसे आँसुओ के दर्पण म सिल्क की साडी पहनती हुसा को देखता और आँखो मे उसकी छवि लिये नयी दिल्ली की सडको पर घूमता रहा था। तरसता रहा था कि काश, हसा को सचमुच नयी दिल्ली की शानदार सडको पर साथ घुमा सकता। ओठो मे लिपस्टिक लगाये, हाथ मे 'पर्स' लिये अपने चपरासी पतियो के साथ जाती पहाडनो को अथाह कौतूहल के साथ नयी दिल्ली की शानदार दुकानो की सैर करते देख कर, शकरसिंह बचन हो उठता। लिपस्टिक खरीदकर, हसा की फोटो को अपने सामने रखकर, उसके ओठो को रगता। कार टैक्सी या स्कूटर का 'हार्न' सुनते ही एकाएक चौंककर, अपने पति की पीठ से सट जानेवाली पहाडनों को देखकर,

शकरसिंह को लगता, कोई उसकी पीठ से भी लग गया है और वह, बिना कुछ सुने, अपने आप ही चौंक उठता।

एकात के सन्नाटो मे उसे हसा के साथ गाँव मे बीते वो क्षण अक्सर याद आते, जबकि वह खेत जोतता होता और पीछे-पीछे ढेले फोडती या बीज बोती हसा चल रही होती। वह लकडिया फाडता, हसा बडे जतन से गटठर बाँधती। वह मछलियाँ मारता और हसा बडे उल्लास से उन्हे इकट्ठा करती। हसा चिलम भर देती और वह सयानो की तरह हुक्का गुडगुडाता स्मृति के ऐसे सघन क्षणो मे हसा को चिट्ठी लिखते समय, उसे लगता कि रोम-रोम से असख्य शब्द फूटने को हो आए हैं।

आज और भी अधिक भावुक हो आया है उसका मन, क्योकि अगले ही महीने घर जाने की सभावना को सँभाल नही पा रहा। गाँव के आस-पास की पहाडियो, घाटियो और नदियो का एक-एक दृश्य आँखो मे उभर-उभर आ रहा है। अचानक ही भ्रम होता है कभी कि वह गाँव के मोड तक पहुँच गया है और तालाब के किनारे खडी भैंसो को पानी पिलाती हसा उसे देखते ही हिरनी-सी व्याकुल भैंसो को जहाँ-का-तहाँ छोड, उसकी तरफ दौडी चली आ रही है। दौडी चली आ रही है

कोठी के कई चक्कर काट लेने के बाद, शकरसिंह फिर चिट्ठी पूरी करने बैठ गया—'बहुत जरूरी काम से जरा वॉकिंग के लिए गया था, डियर, माफ करना! लौटा हूँ तो अपना कठ प्यास से सूखा लग रहा और तू शीतल जल से भरा सरोवर। मगर मजबूरी दोनो तरफ ऐसी ठहरी कि तुम खुद भी प्यासी खडी दिखाई दे रही। किसी कवि ने भी क्या कहा कि—मन उडता पछी भया, उडता चला अकाश—हम सरवर को क्या कहूँ, सरवर खुद ही प्यासा। एक सपना क्या देखा, डियर, कि एक सीनरी मे तुम भैंसों को नहलाती छीनाताल के गहरे पानी मे खडी। भैस को नहलाते मे रेशमी साडी का पल्लू नीचे को गिर गया और मुझे सामने मुस्कुराता खडा देखकर, तुमको कहाँ को छिपूँ, कहाँ को भाग जाऊँ हो रही। माफ करना। मेरे गति भी वैसी ही हो गई कि—हरे रामा, बिरहा अगन लगाई ऐसी, तन मन दिया जलाय। सरवर के रहते भी पंछी प्यासा उडि उडि जाय।'

इतना लिखते ही शकरसिंह को याद आया कि पिछले पोस्टकार्ड में उसने लिखा था—'तेरे बिन सारा जग सूना, दिल कैसे बहलावें। सूखा सरवर,

प्यासे पछी, प्यौंरी, उड-उड जावें।' और उसके ही उत्तर मे हसा का उलाहना आया था कि—'छि छि ! क्या हो, तुम्हारे दिल्ली शहर मे बद लिफाफे नहीं मिलते क्या, जो तुम ऐसी ऐसी बिशरम बातें खुले पोस्टकार्ड मे लिखते हो ? छोटे देवर कहते सबसे कि—हमारे दाज्यू ने भौजी को प्यौंरी-प्यौंरी का दोहा लिख मारा !'

इसीलिए तो आज शकरसिंह अन्तर्देशीय पत्र ले आया। पेन भी ले रखा है, मगर प्राइमरी से मिडिल कक्षा छँ की पढाई तक स्याही मे कलम डुबोकर लिखने का ही अभ्यास रहा है। पेन से लिखायट अच्छी नही बन पाती। जी निब वाले होल्डर से छोटे-छोटे अक्षर बनाने के प्रयत्नो के बावजूद, अब सिफ 'तुम्हारा सबलो हसबेण्ड शकरसिंह' लिखने भर की ही जगह शेष रह गई है। खैरातीराम अस्पताल की बडी घडी की छोटी सुई पाँच पर पहुँच गई। गैरेज मे सोये हुए दो दूसरे घरेलू नौकर जागने लगे। चिटठी लेटर-बॉक्स म छोडने के बाद, शकरसिंह गैरेज में सो जायेगा।

'उठो, हो !'

शकरसिंह चौंककर उठ बैठा। घर पहुँचे कई दिन हो गए, मगर रात को अब ठीक से यहाँ भी नींद नही आती। सबेरे जब हसा दूध चाय पीने को उठाती है, तो शकरसिंह चौंक उठता है। उसे लगता है गैरेज से कार बाहर निकालते हुए सरदार हरबससिंह चिल्ला रहा है—ओये, ओ गोविंद-बल्लभ दे पुत्तर, जरा परे परे तो सोया कर, बादशाओ !

या इन दिनो शकरसिंह प्राय हसा के ही निकट मँडराता रहा है। उसे बताता रहा है कि दिल्ली शहर कैसा है और वहाँ औरत-मर्द कैसे एक दूसरे के हाथो को हिलाते, सीटी बजाते, फिल्मी गाने गाते हुए सैर करते हैं। अपने हाथो हसा के ओठो मे लिपिस्टिक लगाता है शकरसिंह और साडी का पल्लू सिर पर से उतारकर, पीठ पर डाल देता है। कलाकारा की सी अदा मे बालो का जूडा बाँधकर, उसमे प्लास्टिक के फूल खोस देता है। ऊँची एडी के सैंडिल पहनाकर, कमरे के अन्दर ही चलवाता है। हसा टोकती है, झिझकती है, तो डाँट देता है कि घर से ही सब कुछ सीख कर नही जायेगी, तो वहाँ उसके दोस्त लोग हँसी उडायेंगे कि कैसी गँवार औरत से शादी कर लाया।

इतना ही नही, शकरसिंह यह भी समझाता रहता है कि दिल्ली शहर मे

घूमते फिरते समय सडक कैसे पार करनी चाहिए। पीछे से कार का हॉर्न सुनाई दे, तो पीठ पर चिपक जाने की जगह, कैसे शकरसिंह का हाथ पकडते हुए थोडा-सा पीछे मुडकर देख लेना और धीरे से मुस्कराते हुए, हाथ मे थमे पस को हिला देना चाहिए। किसी बढे शानदार होटल मे लच और डिनर लेते समय कैसे काटे-चम्मचो का इस्तेमाल करे। पहले 'टोमेटो सूप' लेने के बाद, फिर खाना शुरू किया जाए। खा लेने के बाद, जोर-जोर से पिच्च-पिच्च की जगह, हलके से कुल्ला करके, रेशमी रूमाल से ओठो को थोडी देर तक थपथपाते रहे। मिलने जुलने पर दूसरा से हैलो हैलो और थैंक्यू-थैंक्यू' कहे। कोई जरूरी काम पड जाए, जैसे कभी बच्चा ही होने वाला हो, तो 'लेबर पेन' उठने पर, घबडाने की जगह, अहलूवालिया साहब के ड्राइगरूम वाले टेलीफोन नम्बर सिक्स फोर थ्री फाइव नाइन से कैसे टेलीफोन करके शकरसिंह को घर बुला लिया जा सकता है।

मगर पिछले चार वर्षों मे जितना कुछ खुद देखा-सुना और सीखा है शकरसिंह ने पिंजरे मे टगे तोते की तरह उसे हसा को सिखाते सिखात कभी-कभी खुद ही एकदम चौंक उठता है। हसा को दिल्ली अपने साथ ले जाने की तृष्णा तो मन मे जरूर अपार है। मगर सभावना? कुल डेढ दो सौ मिलते हैं। कोठी मे सिर्फ गैरेज या बरामदो मे सोने की इजाजत है नौकरो को, वह नौकरो के बीच हसा को कहाँ रखेगा? कोठी के बहुत-से कमरे बन्द पडे रहते हैं, मगर शकरसिंह के लिए तो उनके दरवाजे खुले होने पर भी बद ही रहते हैं। कही अलग कमरा ले ले, तो किराया इतना कि फिर गुजर कैसे होगी? बडे-बडे होटलो मे लच और डिनर की जगह, घर मे आटा-चावल-दाल भी दुर्लभ होते जाएँ, तब क्या होगा? शहर घूमने के लिए कार-टैक्सी छोड बस का किराया भी नही होगा, तो क्या स्थिति होगी?

छुट्टी के शेष दिन तेजी से बीतते चले जा रहे हैं और शकरसिंह यहाँ भी जैसे खुद अपने ही सपनो की चौकीदारी करता रह गया है।

हसा सो जाती है, शकरसिंह जागता रहता है। लगता है, रात के सन्नाटे को बार बार कोई बुलद आवाज चीर जाती है—'जागते रहो ओ-ओ' और शकरसिंह के मन मे एक साथ न-जाने कितनी तृष्णाएँ जाग उठती हैं।

तब एकाएक ही आँखें आद्र हो जाती हैं और उसके सारे सकल्प विकल्प राख हो जाते हैं। वह सारे समुदर मे प्यासे हसो की पाँत की भाँति उडता-उडता थक जाता है।

रात भर का जागा शकरसिंह सवेरे एकदम चौंकते हुए उठ बैठता है—

'सतसिरी अकाल, सरदार साहब !' और एक तरफ हटकर सोने लगता है।
लेकिन तभी आँख खुली, तो पता चलता है कि दायाँ हाथ हसा की पीठ पर सपने नही हकीकत मे है। हसा की उपस्थिति का बोध होते ही, मन ग्लानि स भर जाता है। रात भर शकरसिंह यह कहन के इरादे का टूटे शीशे की तरह जोडता रहता है कि—'हसो, अब मैं दिल्ली शहर नही जाऊँगा, इसी गाँव मे रहूँगा तेरे साथ !' मगर सवेरे फिर सिगरेट-होल्डर निकालता है, उसमे से अधजली सिगरेट निकालकर फेंकता हुआ, नयी सिगरेट सुलगाता है और बडी नफासत से धुआँ छोडते और हसा का हाथ हिलाते हुए कहता है— गुड मोरनिंग, डियर !'

आज भी सिगरेट होल्डर निकालने लगा शकरसिंह तो याद आया कि सिगरेटें ही नही ख म हुई हैं, बल्कि छुट्टियाँ भी खत्म होने को आ गइ। सिर्फ चार दिन और रह गए। और और लगता है, सिगरेट होल्डर मे अटके अधजले ठूठ की ही जैसी स्थिति अब उसकी भी हो गई। सारा उल्लास राख होकर, रीतता चला गया। अब हसा खुद लिपस्टिक लगाये, सैंडल पहने सामने आती है तो भी डर सा लगता है। आँखें अपनी ही भ्राति को झेल नही पाती है। उसे एकाएक उदास देखकर, हसा हसती हुई 'हैलो हैलो' कहती है, तो लगता है, जैसे कोई सुलगते अगारो को हथेलियो पर चिपटा रहा है। उम्र आज भी कुल जमा कितनी है ? इकतीसवाँ ही तो लगा है, ग्यारह गते उन्नीस सौ अट्ठावन से। मगर सपने ऊचे हैं और साधन छोटे, तो जवानी मे ही जजरता है।

सिर्फ सौ के आस पास बाकी बचे हैं। अपने ही जाने को भी कसर पड सकती है। आते समय बहुत से कपडे और फालतू चीजें खरीद लाया था, अब अफसोस होता है कि कुछ कटौती भी जा सकती थी। छोटे भाई रगीन फिल्मी गानो की किताबें और किस्सा लैला मजनू को जोर जोर से पढ़ने लगते हैं। भोली हसा जूडा कसकर प्लास्टिक का गुलाब खासती है। सिर पर से पल्लू उतार, पीठ पर डाल लेती और सैंडिल पहनकर, कमरे मे चलने-फिरने लगती है। शरम म डूबी पूछती है—क्यो हो, तुम्हारी कुतुबमीनार की सीढ़ियों पर तो सण्डिल उतारकर ही चढना पडता होगा ?

और और शकरसिंह गाँव छोडकर तुरत भाग जाने को छटपटा उठता है। चौमास की हरियाली की तरह स्वान पेरती तृष्णाओ की व्यर्थता

बहुत बुरी तरह कचोटती है। अपार तृष्णा की कुतुबमीनार की असख्य सीढियो पर शकरसिंह नाम का एक लाचार बौना चढना भी चाहे, तो आखिर कितनी मजिलों तक जा सकता है ?

वह कब का जाग चुका था, हुसा आई, चाय रखकर चली गई, तो शकर सिंह ने छोटे भाई किशन को आवाज देकर, बीडी का बडल मँगवा लिया। अपने मे ही खोये-खोये, उसने बीडी को सिगरेट होल्डर मे लगाया, तो नीचे गिर पडी। शकरसिंह को लगा कि अब यह भी शायद हुसा के लिए ऐसे ही अनुपयुक्त हो गया। चारो तरफ इतने सपने फैलाकर, अकेले लौटता देखेगी हुसा, तो यह पहाडी नदी फिर पीठ-पीछे ही छूट जायगी, और इसका शब्दो से परे का शोर इधर से उधर पछाडता रहेगा।

इतना वह बिलकुल जानता है कि स्थिति समझा देने पर हुसा साथ ले जाने की जिद कदापि नही करेगी। उसने तो अपनी ओर से आग्रह भी नहीं किया था। वह तो साफ कह रही थी कि किशन की घरवाली अभी अयानी है और इजा[1] अब कमजोर हो चली। शकरसिंह ने ही उसे दिल्ली के अजीब-अजीब रग-ढग सिखाने शुरू किए।" और अब अपने ही गढे सपने को हुसा की आँखो मे टूटते देखना कितना दुष्कर होगा ? कितना दुखद होगा नितांत स्वाभाविक उत्साह और आकाक्षाओ मे उफनती इस नदी को पीछे ऐसा दारुण शोर मचाते छोड जाना, जिसमें से शब्द अलग करना कठिन होता है ?

हुसा कपडे धोने तालाब की ओर चली, तो शकरसिंह घर पर ही रह गया। उसे लगता रहा कि हुसा शायद दिल्ली जाने के लिए ही सारे कपडे धो रही है। वह साथ रहा, तो लौटते मे रास्ते मे मिलने वाली औरतो से अदम्य उमग के साथ दिल्ली जा रहे होने की बातें करेगी और फिर जाने के दिन शकरसिंह अकेला-अकेला विदा होने लगा, तो क्या कुछ बीतेगी इस पर ?

शकरसिंह, अपने ही प्रश्नो से मर्माहत, एकाएक खडा हो गया। उसने अनुभव किया कि ऐसी स्थिति को हुसा भले ही झेल ले, वह खुद नहीं सँभाल पाएगा। हुसा ऊँची पहाडी पर खडी नीचे घाटी मे झाँकती रहेगी, तो उसके पाँव अपने-आप टूटने टूटने को हो आएँगे।

शकरसिंह, बीडी पीता हुआ, तालाब की ओर निकल गया। हुसा घुटने-घुटने तक डूबी कपडे धो रही थी। शकरसिंह को याद आया कि कल ही तो

---

१ माँ (सास)

उसने हसा को समझाया था कि स्कट कहाँ तक की पहननी होगी। उस समय हसा लजा गई थी और इस समय शकरसिंह शर्म का मारा गहरे ताल मे डूबने को हो आया।

जैसे किसी चोर को स्थान दिये बैठा हो भीतर, एक नजर उसने चारो तरफ घुमाई। हालांकि, मौसम था बीतते शरद का, लेकिन धूप चारो तरफ गहरी थी। नदी के आर पार के खेत हरियाली मे डूबे पडे थे। बीच बीच म पीली सरसो अपनी उपस्थिति को जैसे सबसे अलग जता रही थी। नदी किनारे गाय, भैंस और बकरियो के झुण्ड अपने नित्यकर्म मे जुटे थे। इस सारे परिदृश्य को शकरसिंह ने जैसे क्षण मात्र मे ही काफी दूर दूर तक देख लिया। जैसे कोई इलहाम हुआ हो, वह एकाएक बोल उठा—'हसी मेरी छुट्टी के तो अब सिफ चार ही दिन रह गए। फिर तो बरसों में कभी लौटना हो पाएगा। एक दो दिन अपने मायकेवालो को भेंट आना चाहती, तो भेंट आ? परदेश यो भी बुजुर्गों के चरण छूकर और उनका आशीष लेकर ही जाना ठीक हुआ। हुआ कि नही?'

वाक्य समाप्त करते ही शकरसिंह को लगा, कहते कहते उसके ओठ सूख गए। वह चाहकर भी 'डियर' या 'प्यारी' कहकर हसा को सबोधित कर नही सका और जैसे अचानक ही कोई काम याद हो आया हो, बिना हसा के उत्तर की प्रतीक्षा किये ही, घर की तरफ वापस चल दिया।

हसा का मायका समीप मे ही गाँव मे है। दोपहर को ही हसा चल पड़ी, तो शकरसिंह उसे बार बार कहता रहा कि—'आज सोमवार है हसा? बुधवार तक जरूर लौट आना' मगर न तो यह बता सका कि यह तो कल सवेर ही दिल्ली को चला जाएगा और न यह कि—'बुध को लौट आना बृहस्पतिवार को दिल्ली रवाना होगे।

घुसे-घुसे मन से शकर सिंह उस गाँव के तालाब के पास तक छोडने चला आया।

पानी से भरे तालाब मे पेडो स गिरे पत्ते तैर रहे थे। आस-पास पक्षियो का चहचहाना था और इमकी गूँज तालाब की धूप मे झिलमिलाती सतह पर प्रतिबिम्बित होती जान पडती थी।

मगर शंकर सिंह का लगा, उसक अन्दर का सरोवर तो आज एकदम सूख गया हसा को साथ ले जाने, उसे दिल्ली की चकाचौंध दिखाकर चकित करने तथा स्वय की आकांक्षा का जीवन जीने की जो कामनाएँ वह

अब तक करता रहा, वो सब हसो की सी क्तार बाँधे, उसे अकेला छोडती, जाने कहाँ को उड चली हैं। उसे लगा कि ज्यो-ज्यो हसा आगे बढ़ रही है, त्यो त्यो उसके भीतर की वीरानी बढती जाती है।

कुछ कदमो तक हसा थोडा आगे बढती और फिर मुडकर शकर सिंह को देखती। उसका अनुराग आँखो मे झिलमिलाता भासित होता था। सास भर के आँगन मे ही खडी उसे विदा होते देख रही थी। देवर किशन उसके साथ साथ चल रहा था, मगर जिस तरह का वातावरण था, उसमे जैसे बाकी सारी वस्तुओ की उपस्थिति नगण्य ही जान पडती थी। यो ही धीरे धीरे आगे बढती, आखिर वह मोड के पार निकल गई।

हसा का दिखाई पडना बद होते ही, उसे लगा कि देखते-देखते एक पहाडी नदी उसकी आँखो से जाने कब तक को ओझल हो गई है और पीछे छूट गयी है सिर्फ उसके ओझल हो चुके होने की आवाज

● ●

सुहागिनी

सुवा रे, ओ सुवा !
बनखण्डी रे सुवा !
हरियो तेरो गात
पिंडलो तेरो ठूना[1]
बनखण्डी रे, सुवा !

काँसे की थाली में लीलावती बोज्यू[2] रोली अक्षत भिगो रही थी और पद्मावती डबडबायी आँखों से देख रही थी कि उसकी आँखों की पुतलियों में जो आत्मजल केवले के किश्तीनुमा पत्तों में अटकी ओस की बूँदों की तरह थरथरा रहा है, उसमें लीलावती बोज्यू ही नहीं आस पास के सारे वातावरण का पूरा पूरा प्रतिबिम्ब उभर रहा है—

बनखण्डी रे, सुवा !
हरियो तेरो गात—

लीलावती बोज्यू बार बार कदलीपत्रों की पालकी में बैठे वरदेवता घट रूप श्री रामचन्द्र को टुकुर-टुकुर देखती हैं और उनके आँसू, जैसे एकबारगी छल छलाकर, काँसे की थाली में गिरते हैं और लगता है, रोली-अक्षत एका कार हो गये ! ध्यान से देखो तो लीलावती बोज्यू आँसुओं की बरसात मुहावरे का साकार करती अनुभव होती हैं। बाबा तुलसी ने जो कहा कि 'बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे' तो लीलावती बोज्यू सिर्फ पहाड़न हुईं, पहाड़ नहीं, इसलिए अगर बिरादरी या मोहल्ले वालों के वचन सुनने पड़े, तो आघात से हृदय

१ चोंच २ भाभी

विदीर्ण होने ही वाला ठहरा। और काँसे की थाली हौले से ऐसे छणछणा उठती, जैसे बरसात की बूँदो से टीन की छत बजने लगती है—

ओ सुवा, रे सुवा !
बनखण्डी रे सुवा !

शकुनाखर गाने मे कुल तीन चार औरतें लीलावती बोज्यू का साथ दे रही थीं। बहुत सम्भव है कि कोई किसी को कुहनी से ठेलती, विनोद या व्यंग मे मुस्कुराती भी हो। आदमी जिस मनोभाव और स्थिति मे हो, दूसरो का व्यवहार भी उससे जुड़ा लगता है। खासतौर पर जबकि प्रकरण स्वयं के विपरीत हो। हालांकि विवाह-जैसे प्रकरण को विपरीत कैसे कहा जा सकता है, लेकिन जिन्हे विधाता वाम हो, उन्हें तो मंगलकाय भी अभिशाप ही हुए।

पुरोहित आवश्यक विधान मे लगे थे। बड़े भाई का हाल बुरा है। मानसिक, आर्थिक और शारीरिक, तीनो छोरो पर सिवा टूटन के और कुछ नहीं। पद्मावती कैसे कहे कि पिता नहीं रहे, तो बड़े भाई ने धर्म नहीं निभाया। हाड़ माँस के वरदेवता दुर्लभ ही रह गये, तो इसका कारण वांछा का अभाव नहीं। क्या कहा था, कल रात ही, अपने पास बुलाकर दाज्यू ने—'लीला, मैं समर्थ नहीं हो सका। मेरे पाप छिमा करना।'

बड़े भाई के जोड़ने की कोशिश मे और ज्यादा बिखरते कातर शब्द और हाथ, दोनो अच्छी तरह स्मरण हैं लीलावती को। भीतर से कोई लगातार यही बोलता प्रतीत होता रहा है—असमर्थता तो क्षमा की वस्तु है, कोप की नहीं।

दाज्यू का खाँसना बाहर आंगन तक आ रहा था। उसे यही हुआ कि नहीं, किसी भी हाल मे धैर्य नहीं खोना है।

एकाएक, डबडबायी आँखो को सामने सुयालघाटी की ओर उठा दिया पद्मावती ने। उधर के खुले विस्तार की ओर देखते रहो, तो कभी-कभी, पियरायी चोचो वाले शुको की पूरी पाँत-की-पाँत जैसे आँखो की पुतलिया को आच्छादित करती, उमड़ती चली जाती है, मगर, छलछल भरी आँखा के बावजूद, आज पद्मावती को सारी सुयालघाटी कुछ रीती रीती ही लगी। दीठ बाँधती पुतलियाँ ढाँपती बनखण्डी शुको की पाँत कहीं नहीं दिखायी दी। सारा वितान शून्य हुआ पड़ा प्रतीत होता रहा।

पद्मावती को किसी टूटे वाद्य मे उत्पन्न गूँज की तरह लगा कि अरे, उसके आस पास तो उसकी शादी के शकुन चहचहा रहे हैं आज तो और खुद लीलावती बोज्यू हरियाये-पियराये बनखण्डी शुकों को न्यौत रही हैं—'बनखण्डी रे'—और उसके कान, पाताल भुवनेश्वर की अछोर अंतर्गुहाओं-जैसे गूजते ही चले जा रहे हैं। शकुन-आंखर के शकुनों की चहचहाती अनुगूंजो से पूरा आगन भरा भरा सा मालूम पड रहा है और बनखण्डी शुकों की पाँत की-पातें कहीं आत्मा की अंतर्गुहाओं की सुँयालघाटी मे उडती ही चली जा रही हैं—उडती ही चली जा रही हैं—

बनखण्डी, रे सुवा !
हरियो तेरो गात,
पिङ्लो तेरो ठूना—

निहायत सामान्य ही सही, मगर पिछौड़ा कुसुम किया है और घाघरे मे भी नयी गोट लगी है। वस्त्र सामान्य हैं लेकिन प्रसग असामान्य। सुबह नहाकर, नये वस्त्र पहने पूर्व दिशा को मुँह किये खडी हुई थी, कुछ क्षणों को पद्मावती। घर छोटा पुराना, लेकिन खुले स्थान पर है। शहर का पश्चिमी पार्श्व तो यहाँ से ओझल, लेकिन पूर्व दिशा मे उधर जालना से लेकर मुक्तेश्वर तक की पहाड़ियाँ साफ साफ दिखती हैं और जब शोक मे रहो, तो चारो तरफ उसकी ही छाया अनुभव होती है और हर्ष में हवा भी प्रसन्न।

इस घट विवाह के खिलवाड का हर्ष तो खैर, क्या होना था मगर प्रसग विवाह का होने से अभी अभी पहने वस्त्रो तक में एक यही आभास अनुभव होता कि बचपन मे मिट्टी की मूरतों का विवाह रचाने भी कितना कौतूहल अनुभव होता था ?।

उधर पुरोहित राधावल्लभ मातृपूजन निबटा रहे हैं और इधर उसके विषाद मे स्वय भी डूबी सी लीलावती बोज्यू की आँखो मे आँसू भरे हैं और वह उनके एकदम सामने ही बैठी हैं। उनके आँसू तो काँसे की थाली की ओर निकास पा सकते हैं मगर पद्मावती का सामना किसी और नही, बल्कि स्वय से ही है। उम्र के पतालीस साल बिना चुकने के बाद दुलहन की तरह सवरी, सजायी बैठी है, तो वदनीयता की पानही मे जो परमेश्वरता श्रीरामचन्द्र पालथी मारे बठे हैं, मगलकलश के रूप मे उनकी ताम्रवर्ण देह दीपको के उजाले में कुछ ऐसे चमक-चमक उठती है कि पद्मावती को लगता

है, सारे दीपक, थाली की जगह, उसकी अन्तर्गुहा मे जल रहे हैं—शकुना देही, राजा रामचन्द्र अजुध्यावासी

भीतर भीतर जो कुण्ठित चित्त को और ज्यादा वेधने वाले दीपक जल रहे हैं, इस प्रौढ़ावस्था मे सिर्फ परलोक मे तारण के लिए दुलहन बनने की विवशता के, उनकी झाँइ को कही निकास ही नही मिल पा रहा। काजल बनाना आता है पद्मावती को, इसी से अनुभव होता है कि जैसे कही भीतर काजल भरता जाता है। मन किसी पुराने मंदिर के गर्भगृह के वातावरण मे घिरा प्रतीत होता है।

इस विलक्षण से अनुष्ठान के क्षणो मे विगत जैसे किसी गरुड पक्षी की भाँति डैने फैलाये, माथे पर बैठ गया है। स्मृति पटल पर जाने कितनी प्रकार के बिम्ब उभरते जाते ह। कभी अचानक ही हूक-सी उठती है कि जिन सुहागिनो की गोद मे छौने आते रहते हैं, वो कैसे छोटी छोटी डिबिया म काजल समेटकर रखे रहती हैं? घुटने पर बालक के सिर को हिलाती 'हूँ-हूँ' करती, उँगली की पोर से काजल आँजती हैं, तो उनकी आँखो के किनारे माँ की उँगली के चक्र या शख की छाप उतर आती है।

जबकि यहाँ, पद्मावती के सामने बिल्वपत्रा के छोटे-छोटे तोरणा के बीच धरा है, ताँबे का कलश!—यानी घट विवाह का ताम्रघट! ऊपर तक मन्त्राभिषिक्त जल से भरा। मुहाने पर दूब के तिनके और जवाकुसुम-हजारी के फूल। ताम्रघट के गले की रेखाओ के नीचे के वर्तुलाकार विस्तार मे रोली से भगवान विष्णु की कल्पनाकृति अकित है। जहाँ अक्षत लगे हैं, वहाँ पर माथा होने का अनुमान होगा और जहाँ फूल की पखुडियाँ अटकी हैं, श्रीचरण होगे। यही वर के यहाँ उपस्थित होने की गवाही है और यही इस बात का सूचक कि घट-विवाह हो रहा है।

घट-विवाह और वह भी गरीब ब्राह्मण के घर में। कही किसी उत्सव के हो रहे होने का आभास तक अनुपस्थित है। बिरादरी की कुछ औरतें कुछ देर को इकट्ठा होती, शकुन गीतो मे हिस्सा लेती और फिर घर के जरूरी काम निबटाने को चल देती हैं। बच्चो को भी कुछ आकर्षण नही। तरह-तरह क बाद्य और नृत्यो वाले विवाहो की तुलना मे, यह एक ऐसा आकर्षण हीन कौतुक है उनके लिये कि कभी पक्षिया का सा झुण्ड इकट्ठा हुआ भी, तो तुरत बिखर जाता है।

पद्मावती चौके पर बैठी है, उसके साथ कल्पना का ससार ज्यादा है

बाहर का भय। वह भलीभाँति जानती है कि ताँबे का यह वरूप कलश उसे सुहागिनी तो बना सकता है, लेकिन लेकिन

दुख तो उमडा पड रहा था, मगर फिर भी पद्मावती को शरम लग गयी कि—छिच्छी, इतनी औरतो के सामने कितनी छिछोर बात सोचती है वह भी!

एक तरफ लज्जा और ग्लानि दूसरी तरफ बडे भाई की इच्छापूर्ति का दबाव, पद्मावती को तो जैसे कही निकास नही है। जब जब हृदय गहरे अवसाद मे डूबता सा मालूम पडता है, तुरत कल्पना के विस्तार की तरफ रुख कर लेती है वह। वहाँ सिवा अपने और किसी की उपस्थिति नही। वहाँ किसी अन्तर्गुहा मे वालस वासिनी की तरह अवसन्न बठी पद्मावती क्षण-क्षण अपना रूप बदलती रहती है। यहाँ सचमुच की दुलहन के से आह्लाद को भी स्वच्छ द है पद्मावती और स्वय के साथ हो रहे खिलवाड को नियति का खेल मानने को भी।

बनखण्डी, रे सुवा!
ओ सुवा रे सुवा!

एक समय था कि शकुन आँखरो की गूज सुनते ही पास पडोस के विवाहो में पक्षी की तरह चहचहाती दौडती थी पद्मावती। वह उम्र तो बहुत पहले ही बीत चुकी, मगर उस चहचहाहट की मर्मवेधी अनुगूँज आज तक शेष है। रग साँवला, आँखें मिचमिची और देह सूखी। दिखने मे तो पद्मावती तरुणाई मे कुछ भी नही थी, मगर कण्ठ इतना सुरीला कि सात सात शकुन आँखर गानेवालियाँ बैठी हो तो उसका आठवाँ सुर सबसे अलग ऐसा गजता कि औरो की आवाजें डूबने लगती। हवा मे डोलते बाँसो के झुरमुटो मे से आया हुआ सा उसका स्वर अपनी परिधि मे उपस्थिता को एक सम्मोहन मे बाँध लेता। एक अद्भुत नैसर्गिक सी लय होती उसके शकुनाँखर गाने म, जो दूसरी गिदारो को भी यही इगित करती जान पडती—सुनो, तुम भी मुझे सुनो!

लीलावती बोज्यू तो तब भी यही कहती थी कि 'लली, बहुत शकुन गाती हो तुम। और इतनी मधुर-मीठी आवाज मे कि लगता है, तुम सिर्फ शकुन गाने के लिये ही जन्मी हो, सुनने को नही।'

पद्मावती तब भी जानती थी, लीलावती बोज्यू के मुह से उनकी व्यथा बोलती है। ब्राह्मण-कन्या तो पैसे वालों की भी बहुत परेशानियो के बाद ही

ब्याही जाती, वह तो एक दरिद्र परिवार की कन्या थी और वह भी क्षीणकाय, कुरूपा। गोरे को तो काजल का टीका भी बहुत फबता है, लेकिन काले के कपाल की रेखाएँ तो चदन के तिलक से भी उजली नही हो पाती। लीलावती बोज्यू को, जब कहीं लगन छाये, तब इसी विषाद मे देखा गया कि सोने-चाँदी के आसन पर बिठाकर विदा करने की क्षमता हो, तो कुब्जा भी काता बनाई जा सकती है, मगर दान दहेज से रीती, सूखे काठ जैसी काया को कौन देगा अपने घर मे बहू का आसन ?

गरीब पुरोहित के घर मे जन्म लिया था पदमावती ने। सूखे काठ जैसी साँवली काया पायी थी, मगर आत्मा उस कठबाड के पार कभी वनखण्डो मे उन्मुक्त चहचहाती और कभी उदास, जाने अपने ही किन सन्नाटो मे बिलखती रहती। कठबाड-जैसी काया को सभी देखते, इसके पार देखने वाली आँखें दुर्लभ थी। एक जोडी आँखें बडे भाई बुद्धिवल्लभ पुरोहित, एक जोडी लीलावती बोज्यू की। भाई भाभी की आँखो के स्पर्श कठबाड के पार भी पहुँचते, मगर पद्मावती की भाग्यरेखाओ से टकराते ही धुधला जाते। पुरोहित बुद्धिवल्लभ कभी कभी खीझ उठते कि 'इस अभागिन के कारण तो मुझे भी नरक भोगना पडेगा!' उन्हे यही चिंता अक्सर कुरेदती रहती कि जिस ब्राह्मण के घर मे कुवारी बहन राख के अन्दर के कोयले की तरह दुखो मे सुलगती रहे जीवनपर्यन्त, उसका तारण तो चौंसठ तीरथो की परिक्रमा से भी नही होना।

लीलावती बोज्यू अपने पाँच बच्चो की ओर देखती, तो उन्हे भी हलका-सा भय व्यापता जरूर कि कही कभी कोई आना काना ब्राह्मण मिल ही गया, तो बुद्धिवल्लभ घर की लटी पटी धो-पोछकर पद्मा के ही पीछे न लगा दें ! मगर कभी उन्होंने ही तो कहा था कि पदमा शकुन-आखर गाने के लिए पैदा हुई है, सुनने को नही! बरस पर बरस बीतते गये थे। तीस पार पहुँचते-पहुँचते पद्मावती निराशा-कुण्ठा अनुभव करने लगी लेकिन एक यह विचित्र-सा परिवर्तन अचानक शुरू हुआ कि पैंतीस तक पहुँचते-पहुँचते सूखी-साँवली देह भरती चली चली गई और सैंतीस बरसो की उम्र काट चुकने के बाद पदमावती को किसी आते-जाते को स्वय की छवि से अटकाने का सुख तब मिला जब एक दिन, पदमावती को देखकर, मोहल्ले के अपर स्कूल का हेडमास्टर गगासिह हँस पडा कि—'बौराणज्यू पुराना गुड और ज्यादा गुणकारी होता, ऐसा सुना तो मैंने भी जरूर था, मगर आँखो से पहली बार देख रहा !'

तब पद्मावती, कभी कभार, अपने भतीजो को स्कूल पहुँचाने जाती थी। लेकिन यह पहला अवसर था कि गगा मास्टर ने होली का छोटा-जैसा छोडा था।

बहुत मन हुआ कि कहे— 'ओहो, आपको भी कोई और नहीं मिला बेवकूफ बनाने को, मास्टर साहब!'—लेकिन अकस्मात का सामना इतना आसान कहाँ? कुछ क्षण द्विविधा मे बीत गये और जब तक मैं कुछ कहे, गगा मास्टर ने कुशल मगल की औपचारिकता शुरू कर दी—'और बुद्धिवल्लभ जी तो आनन्द से ही होगे '

कभी-कभी अचानक कोई अकेला शब्द भी कैसे-कैसे करतब दिखाता है। आनन्द' शब्द को सुना, तो जाने क्यो लगा कि आनन्द के अनुभव का समय कैसे बिना पधारे ही बीत गया!

सपने तो कोई भी, शरीर से नही, अतरात्मा से देखता है। जानता है हर कोई कि उसके हाथो की पहुँच मे कितना है, लेकिन जहाँ आँख झिपी, एक दूसरा जगत शुरू हो जाता है। कैसे इकार करे, और किससे कहे पद्मावती कि सपने तो उसे भी आते ही रहे हैं। और देखो तो यह भी सपने के सिवा क्या है कि तरुणाई अस्ताचल के किनारे जा चुकी, तब यह शरीर मै हूँ मैं हूँ' कहने लगा।

घर लौट आई, तो भी गगासिह मास्टर का कहना किसी शरारती की तरह पीछा करता सा अनुभव होता रहा। रात को, नींद आने से पहले, या ही कमरे के शून्य को ताकते सामने के आले पर की राधाकृष्ण की मूर्तिया पर नजर अटक गई। बरसो पुरानी मिट्टी की मूरतें हैं लेकिन आँखो के साथ साथ भावना से भी देखो, तो राधा-कृष्ण को उलाहना देती सी मालूम पडती हैं और कृष्ण शरारत मे बाँसुरी बजाते।

आदमी अजूबा है। एक जीवन बाहर, एक समानातर भीतर चलता है। या कहो कि आधा जीवन बाहर आधा भीतर विद्यमान, रहता है। बाहर तो अभाव और कुण्ठा मे बीता, लेकिन इस भीतर वाले हिस्से मे पहले भी यदा कदा धारा का सा बहना और पक्षियो का-सा उडान भरना होता चलता था, लेकिन तब सोच विचार नही था इतना कि अनुभूतियाँ आकार ले सकें।

मिट्टी और मूर्ति मे कितना फर्क है। आदमी तो स्वय को जब दूर तक जीवन बीत जाय, तब कही जाकर ठीक ठीक देख पाता है। अब अधेडावस्था मे

मान पड़ता है कि सोचना और सोचते ही जाना गीली मिट्टी को आकार देना है। न होता ऐसा, तो सपने मे क्यों दिखता ऐसा कि गगासिह मास्टर फिर उसी तरह आँखो-आँखो मे मुस्कुराता, 'हाय बौराणज्यू, हाय बौराणज्यू' जैसा कह रहा है।—बल्कि सच पूछो, तो सिर्फ कहने की सीमा को तोडता, सीधे दायी कलाई भी थाम रहा है—'आज तो बहुत ही सुदर लग रही हो आप। नदा देवी की जैसी छवि उतर आई है अब तो आपमे—कौन कहेगा कि सैंतीस की उम्र हो गई आपकी ?'

सुनना अपूर्व सा लग रहा था, लेकिन जाने कहाँ, किस कोने से अचानक ही हुआ कि यह तो जात का ब्राह्मण नही—यह तो—यह तो—तल्ला भूमरा प्राइमरी स्कूल का हेडमास्टर गगासिह है—कही देख लिया वल्लभ दाज्यू या लीलावती बोज्यू—या किसी और जान-पहचान वाले ने—तो—तो—

जैसे साँप ने सूघ लिया हो। एक ही झटके मे हाथ छुड़ा लिया उसने—हट स्साले खसिया! छोड मेरा हाथ। खबरदार, अपने प्राइमरी स्कूल के फाटक से उधर ही रहना। मेरी तरफ देखकर आँखें भुरभुराते हुए 'बौराणज्यू बौराणज्यू' करेगा, तो आँखें फोड दूगी तेरी—टाँगें तोड दूगी—

शायद, सपने मे जोर से हाथ झटकने से ही नीद टूटी होगी।

जब राधाकृष्ण की मूर्ति को टकटकी बाँधे देख रही थी, आले मे का दीप मद्धिम मद्धिम जल रहा था। शहर मे बिजली आये साल बीत गया, मगर अभी अपने घर नही लगी। गर्मियो मे खिडकी खुली रहती है, तो बिस्तर मे पडे-पडे भी उधर सडक पर के पोलो पर तो जरूर दिख जाती है।

खिडकी का खुला होना कुछ राहत देता रहा था। अन्यथा वह तो सचमुच डर गई थी। कही उसका चिल्लाना बोज्यू ने नही सुन लिया हो। बगल मे, साथ, बडा भतीजा सोया था। ढ़ाढ़स-सी हुई कि कहीं यह जागता न हो। दीया इस बीच बुझ चुका था और सडक पर भले ही रोशनी की झिलमिल, मगर कमरे मे घुप्प अधेरा था। पद्मावती हैरत मे थी कि सपने मे धाराप्रवाह, ऐसे ऐसे सवाद कसे बोल गई होगी। गगाराम मास्टर साहब ने तो जितना कहा था, उससे आगे फिर भेंट ही नही हुई।

जागने के बाद भी सपने मे बोले गये सारे सवाद ज्यो त्यो के याद थे और कलाई मे सचमुच झटके गये होने का सा स्पदन। बाकी रात फिर ठीक से नींद आयी नही।

अडोस-पडोस की कई औरतें बहुत बात बनाती थीं कि बेमौसम की

बाढ और ज्यादा खेत तोडती है, मगर ईश्वर साक्षी है कि देह भरने के बाद भी सिर्फ लोगों की आँखों में चमक देखने भर का सुख ही भोगा पद्मावती ने।

तीस पार पहुँचने पर शकुन गाना छोड दिया था, मगर कभी आत्मा मे कल्पना पुरुष सूरज कमल जैसा खिलता चला जाता, तो ओठो मे गुनगुन आती जरूर। अब आठ साल और कट चुकने के बाद पैंतालिसवें बरस मे एक लज्जास्पद अनहोनी यह घट रही कि खुद पद्मावती के कान ही शकुन आखर सुन रहे हैं! कदलीपत्रो की पालकी मे वरदेवता श्रीरामचन्द्र के रूप म ताबे का कलश बैठा है। लीलावती बोज्यू के आसू काँसे की थाली मे बिखर रहे हैं और मरणासन्न मे भाई बुद्धिवल्लभ 'कन्यादान' की सामग्री ठीक करवाने मे जुटे हैं।

पद्मावती तो हठ ही बाँधती रही थी कि 'बोज्यू, इस प्रौढावस्था मे यह गुडियो का जैसा खेल मैं नही रचा सकती!'—मगर जब खुद भाई ने आँसू गिरा दिये, 'पद्मा, मेरा अन्त समय आ गया लगता है। बहुतो की सद्गति की, तारण किया, मगर अब अपना ही तारण दुर्लभ हो रहा। तेरा भाई पिता जो कुछ हुआ, अभागा दरिद्र ब्राह्मण मैं ही तो हुआ, पद्मा! भाई धर्म नही निभा सका, मगर तू तो कल्याणी कुललक्ष्मी हुई! तू अपनी दया निभा दे। तुझे सुहागिन देखने से मेरा तारण हो जायेगा। लली, इतना मैं भी समझता हूँ कि ताँबे का कलश ककण मगलसूत्र ही दे सकता है, सुहाग का सुख नही, मगर '

अपने साठ-बासठ के सहोदर का बच्चो-जसा विह्वल स्वर ज्यादा नही झेल पायी थी पद्मावती और चुपचाप चली आई थी— बोज्यू, इस वृद्धावस्था म मुझे सुहागिनी बना लो!' और, डबाडब भरने के बाद औंधी पडी ताँबे की कलशी-जैसी छलछलाती ही चली गई थी—हे राम! हे राम! हे राम!

सुआ, रे सुआ,
बनखण्डी रे सुआ—
हरियो तेरो गाता
पिगलो तेरो ठूना!—
रामीचन्द्र, अजुध्यावासी!
सीतारानी मिथिलावासिनी
ई ई-ए झुकना देही

और अब सुहागिन बने भी सात-आठ बरस बीत गए।

इन सात-आठ वर्षों मे धीरे धीरे जाने कब अपने उस कल्पना-पुरुष को स्वय के सोच मे प्रतिष्ठित कर लिया पद्मावती ने, जिसे तीस तक की उम्र मे खोजती रहती थी। अज्ञात अमूर्त्त कल्पनालोको मे!

शुरू शुरू में ताँबे का कलश विद्रूप लगता, मगर एक दिन सबसे छोटे भतीजे ने उसमे पेशाब कर दी और पद्मा के चिहुँकने पर लीलावती बोज्यू ने हँसते हुए बात टाल दी, तो एकाएक ही पद्मावती उत्तेजित हो उठी थी—'तुम्हारे लिए यह सिर्फ ताँबे का कलश ही होगा, बोज्यू, मगर मेरे लिए तो सुहाग भी है!'

उत्तर मे लीलावती बोज्यू ने व्यग्यपूर्वक कहा था—'लली, सुहाग तो सग मे शोभा देता, तुलसी के कनिस्तर के पास नही पड़ा रहता।' पद्मावती तड़प उठी थी—'बोज्यू, वृद्धावस्था मे भी बकते शरम नही लगती तुम्हे?'

उसी दिन से पद्मावती ने ताँबे के कलश को इतने ऊँचे चबूतरे पर रखना शुरू कर दिया कि बोज्यू के बच्चे वहाँ तक पहुँच ही न सकें। रोज, दिशा खुलते ही, पद्मा चबूतरे पर से कलश उतार कर पनघट चली जाती। स्नान के बाद, उस आरमन्य कल्पना पुरुष के प्रतिरूप जलकुम्भ को स्नान कराती। स्वच्छ पत्थर पर च दन घिसती और विष्णु-रूप जलकुम्भ का अभिषेक करती—कस्तूरी तिलक ललाट पटले, वक्षस्थले च कौस्तुभ

सुदूर जालना पहाड़ी की चोटी पर पहली-पहली सूर्य ज्योति सल्लि वृक्षो की चोटियो को उजली बना देती है। जल भरे ताम्र कलश के मुह तक छल-छलाते पानी मे पद्मावती प्रतिबिम्ब देखती है। लगता है, कल्पना-पुरुष का मुख-बिम्ब ऊपर उतर आया है—कस्तूरी तिलक ललाट पटले

आँखो की पुतलियाँ अवसाद से भारी हो आती हैं। प्रतिबिम्ब पूरा दिखे, इससे पहले ही ताम्र कलश के मुख पर के जलवृत्त कपकपा उठते हैं और प्रतिबिम्ब, झिलमिल झिलमिल टूटता, आँखो को ओझल हो जाता है, जैसे कोई देखते-देखते गहरे कूप मे डूब गया हो।

पहले भी नित्य जल भरती थी पद्मावती, मगर दिन भर कौवे चोच डाल डालकर पानी पीते रहते, तो पद्मावती हाँकती भी नहीं, लेकिन अब मौसमी फूलो या पीपल के पत्तो का गुच्छा ऊपर रखने लगी ताकि कौवों की चोच पानी तक न पहुँच सके और ताम्र-कलश की ऊपरी जल-परत पर उभरे बिम्ब खण्डित न हो।

किशोरियो का जैसा बावलापन, तरुणियो की जैसी सौन्दर्यानुभूति और

गृहिणियो सा अपनाव—ताम्र कलश पद्मावती की आँखो मे छा गया। लोग ही नही, लीलावती बोज्यू भी परिहास करती। जाने लीलावती बोज्यू ने ही बात फैलायी या पडोसिनो की कल्पना ही इतनी प्रखर कि एक बार सारे मोहल्ले मे चर्चा फल गयी—पद्मावती अपने स्वामी को साथ सुलाया भी करती है!

हे राम, तावे के कलश को अपने साथ

यह बात तो, हो ना हो, लीलावती बोज्यू ने ही फैलायी कि 'मैं नीचे गोठ मे सोती हूँ पद्मा ललीज्यू ऊपर वाले तल्ले पर सोती हैं। एक रात ऊपर की पाल से पानी नीचे चू रहा था—शायद, ताँबे का कलश औंधा पड गया होगा!'

पद्मावती क्या जानती थी, लीलावती बोज्यू इतनी बदमाश हैं। वह तो यही समझती कि सबकी आँखें लग जाने के बाद ही वह ताम्र कलश को चबूतरे पर से ले जाकर अपने सिरहाने रखती है और दिशा खुलते ही ताजा जल भरने चली जाती है।

छिहाडी लीलावती बोज्यू की विमति इस चतुर्थावस्था मे भी गई नही। ननदो के भेद लेने उनसे चुहलबाजी करने की यह उम्र थोडे ही होती!

कभी कभी पद्मा लीलावती बोज्यू के प्रति खीझती भी, मगर फिर अपने ही प्रति उलाहने मे डूब जाती कि—'छि ह्राडी, बोज्यू को तो बहुत गिन गिनकर नाम रखती हूँ मैं, मगर सफेद धतूरे-जैसे फूल जाने पर भी खुद मेरी मति क्यो इतनी बावली है! इस अवस्था मे तो कोई साक्षात् शरीर वाले पति को भी इतना प्यार नही करती होगी!'

लीलावती बोज्यू विनोद मे कहा करतीं—'हमारी पद्मा ललीज्यू बडी तपस्विनी हैं। जितनी सेवा-टहल ललीज्यू इस ताँबे के खसम की करती हैं, उतनी तो मैं अपने हाड मांस के स्वामी की भी नही कर सकी। आखिर कही पद्मावती ललीज्यू के ही कुम्भ से तो नही जनमेगा फिर से कोई अगस्त्य मुनि?

हे राम, लीलावती बोज्यू कितनी चण्ट है! पद्मावती ने सिर्फ इतनी-सी कल्पना ही तो की थी एक दिन कि पहले के सतयुग मे तो पुरुष के स्मरण मात्र से भी मान रह जाया करता था! मगर यह कल्पना करने के दिन जब बावलेपन मे ताम्र-कलश छलछला गया, तो खुद पद्मावती ही शरम मे कितनी डूब गई, वही जानती है। एक बार सपने में कभी यह आशका भी हुई, कि कहीं सचमुच रह ही गया सत्त, तो पडोस को छिछोर औरतें

उसकी श्रद्धा को। थोड़े ही देखेंगी ! सभी यही कहेंगी कि बुढ़ापे में धरम गँवाते लाज भी नहीं लगी"' !

यह सपना भी गगासिंह मास्टर वाले सपने की तरह ही आया था। चिता मौसी को झिड़कने को जोर से हाथ उठाया था तो चूड़ियाँ खनखना उठी थीं और, शायद, इसी में सिरहाने रखा कुम्भ डोल गया था।

गगासिंह मास्टर की ही भाँति, लीलावती बोज्यू को साक्षी रखते हुए, चिता मौसी को भी कई करारे सवाद सुनाये थे पद्मावती ने, सपने में ही—'अरे छिछोरो, जितनी शरम मुझे ताँबे के कलश की, उतनी तो तुमने हाड़-मास के खसम की नहीं की होगी ! देखता कोई कि पहले पहल ताँबे के कलश को सिरहाने रखते कैसे घूघट निकाल लेती थी मैं, तब जानती कि लाज शरम करने वाला हिया होता कैसा है। और कि किसे कहते हैं औरत का शील स्वभाव !

बीच में एक बार सात आठ दिनों को बीमार पड़ी और बिस्तरे से लग गयी पद्मावती। बिस्तरे में पड़े पड़े ही ध्यान आता रहा कि उसके चाहने के बावजूद अब तू-तू क्यों नहीं कहता कोई। और तो और, कमलावती बोज्यू भी 'तुम' ही कहती हैं। पहले कभी कभार तू-तू कहती थी, बड़ा मधुर लगता था, मगर इधर लीलावती बोज्यू का मधुर स्वर कुछ तीता होता चला आया है। क्रोध में बोलती हैं कभी, तो लगता है, गना खखार-खखार कर बोल रही हैं !

लगातार सात दिनों तक ताँबे का कलश बासी ही पड़ा रहा, तो पद्मावती से नहीं रहा गया—मेरे जिन्दा रहते ही यह दुर्गति हो रही है, तो मेरे मरने के बाद तो सीधा टमटों[1] के यहाँ पहुँच जायेगा "!' कहते कहते एक ओर तो बुरी तरह रो पड़ी थी पद्मावती, दूसरी ओर खीझी भी अपनी असयत वाणी के प्रति कि पति तुल्य को 'तू' कहना भारतीय नारी के धर्म विरुद्ध ठहरा !

कल तो लीलावती बोज्यू ने टास दिया था कि 'पद्मावती ललोज्यू, तुम्हारा तो सिर्फ एक ताँबे का ही कलश ठहरा मेरे तो हाड़ मास के ही कलश इतने हैं कि इन्हीं के काम काज से उबर नहीं पाती। यहाँ उतनी दूर नौले तक आऊँ, स्नान करूँ, तुम्हारा कलश मलूँ और चदन घिसूँ '

---

१ ताँबे के बरतन बनाने वाले।

पद्मावती लगभग चीखती सी बोल उठी—'बोज्यू, पेट में हाथ डालकर कलेजा क्या मरोड़ती हो ! इतना तो मैं भी जानती हूँ कि तांबे के कलश से संतति नही जनमा करती और तुम्हारी संततियाँ न मुझे जीते-जी सुख दे सकती हैं और न मरने पर सद्गति मगर कहीं से लफंदर लगाकर तो संतति जनमा नही सकती थी न, बोज्यू !'

रात भर लीलावती पश्चाताप मे घुलती रही थी। सवेरे सवेरे पद्मावती के पास पहुँच गई—'ललीज्यू, तुम्हारा दुःख जानती हूँ। मेरा पाप क्षमा करना। मुण्ड चामुण्ड इतना झिंझोड़ देते कि वाणी वश म रहती नही। तुम्हें भी दुखा बैठती हूँ। ऐसा मत समझो कि ध्यान नही। भावना से ज्यादा बंधने वाला ठहरा आदमी। तुम्हारे अनुराग को खूब समझने वाली हुई मैं। दुःख का पहाड़ जिया ठहरा तुमने। मगर असल बात तो यह है, ललीज्यू, कि तुम्हारे तांबे के कलश मे जल भरना मेरे लिए निषिद्ध ठहरा। तुम्हारे दाज्यू को नही रहे आज कितने बरस हो गये विधवा का जल भरना ठीक नही। उसे तो तुम्हें ही भरना ठहरा। नही तो मैं किसी और से भरवा देती।'

देह अभी भी टूट सी रही थी, मगर फिर भी पद्मा संकल्प बाँधती उठ गई कि आज आठवाँ दिन लग गया है। ज्यो-त्यो भरकर रखना ही होगा नया जल। न जाने किस जनम पति को क्लेश पहुँचाया होगा, इस जनम मे यह गति है। इस जनम मे भी प्रायश्चित पूरा नही हुआ, तो फिर कैसे तारण होगा !

एक तो चतुर्थावस्था, ऊपर से हफ्ते भर की अस्वस्थता, घुटने बजने लग चबूतरे पर चढते, तो हुआ कि कही सुदूर, आत्मा के किसी अनाम वनखण्ड मे चहकते शकुनो को किसी निमम व्याध ने वेध दिया है और घायल शकुनो की पाँत विलाप करती, व्याकुल कण्ठ से चीत्कार कर रही है—

> ओ सुवा, रे सुवा !
> वनखण्डी रे सुवा !
> हरियो तेरो गात—
> कहाँ है, रे तू सुवा ?
> पिङलो तेरो ठूना—
> कहाँ है, रे तू सुवा ?

भावाकुल पद्मावती ने हाथो मे ताम्र-कलश उठाया और आकुल दृष्टि

डाली कि क्या बासी जल मे भी उतरता होगा प्रतिबिम्ब ? लेकिन कृश हथे-लियां थर-थर कांप उठी और कलश चबूतरे से नीचे, आंगन मे गिर पडा—

हे राम ! हे राम !

पद्मावती का करुण विलाप सुनकर, पास पडोस के कई लोग एकत्र हो गए, मगर पद्मावती की आंखो को तो जसे सिर्फ पिचके पडे ताम्र कलश के अलावा और दिख ही नही रहा था। बिलखती ही चली जा रही थी कि गर्गासिह हेडमास्टर की नयी घरवाली का बोलना पद्मावती के कानो को बेध गया—'छि छि ! एक तांबे की टिटरी के लिए ऐसा करुण विलाप करते शरम भी नही आ रही, पद्मा बौराणज्यू को ! अरे, यह फट गया, तो क्या दूसरा नया कलश नही मिल सकता बाजार मे ?'

पद्मावती ने अपनी छलछलाती आंखो मे जैसे आंगन मे बिखरे पानी को भी समेट लिया। मास्टरानी की तरफ देखा, तो पाया कि गर्गासिह हेड-मास्टर भी साथ हैं। एकाएक ही क्रुद्ध बाघिन सी बिफरती, पद्मावती विकट स्वर मे चिल्ला उठी—'चुप रह, ओ खसिणी ! मैं कोई तुझ जैसी सिंधरिया पातर नही ! नया कलश नही मिल सकता है कहती रांड ! अरी, तू ही ढूंढती रह, तुझे ही मुबारक हो नये नये खसम !—मैं तुझ-जैसी कमनियत खसिणी नही—पतिव्रता ब्राह्मणी हूं। कसम है तुझे तेरी ही औलाद की—तू मत रोना जब तेरा खसम भी मरे तो।—मुझे तो यह कुम्भ भी पति-समान ही ठहरा—और सदा पति समान ही रहेगा !'

सभी अचकचा गए। लीलावती बोज्यू को लगा—'हे राम, पद्मा ललीज्यू के हृदय की व्यथा को यहा कौन समझने वाला है ? ये सब तो सिर्फ तमाशा देखने वाले हुए।'

लीलावती बोज्यू आगे बढी। बड़े प्यार से पद्मावती की आंखो को पोछा। बहे हुए आंसू कपोलो की झुरियो मे अटक गये थे। गहरी सवेदना जताते हुए, लीलावती बोली—'पद्मा ललीज्यू, अब चुप हो जाओ ! अरे, बावली, इतना करुण विलाप तो कोई हाड मास के स्वामी के मर जाने पर भी नही करता ! तांबे का कलश थोडा पिचक ही तो गया है ! मैं ठीक करवा दूंगी इसे। फिर जैसा का-तैसा हो जायगा।'

अपनी बात पूरी करते और सहारा देत हुए लीलावती, कमरे मे ले जाने लगी—'अरे, ओ पुनीत, मौसीज्यू के कलश को जरा ठीक से भीतर पहुंचा दे। एक तो बेचारी वैसे ही अस्वस्थ ठहरी—तमाशबीनो को इतना ज्ञान

कहाँ हुआ कि मानो तो पत्थर परमात्मा है—नहीं मानो, तो पति ही पाथर—'

दोपहर को पुनीत के हाथ कलश को ठीक कराने भेजने के बाद, पद्मावती का मन हलका करने को लीलावती ने फिर थोडा विनोद-जैसा किया—'लली, अगर आदमी को चोट पटक लग गई, तो उसको भी आखिर अस्पताल ले जाने वाले हुए या कि नही ?'

पद्मावती इस कल्पना से सिहर रही थी कि ठीक करने दिये गये कलश को तो पहले ठमटा भट्टी पर चढायेगा और फिर हथौडा से उसे पीटेगा "

लीलावती के विनोद ने उसे हलका करने की जगह और कुढा दिया। तीखी आवाज मे बोल ही उठी—'बोज्यू तुम भी सिर्फ कलश के पिचकने की बात ही देखती हो ? मेरी यातना नही दिखती तुम्हे ?'

लीलावती सहसा कोई जवाब नहीं दे पाई, तो उसका स्वर रूखा हो गया—'अरे, बोज्यू, तुम क्या नही कहोगी ऐसा ! तुम तो अब विधवा हो, विधवा ! तुम क्या समझोगी कि सुहागिनी के मन की व्यथा क्या होती !'

और बच्चियों की तरह बिलखती पद्मावती को चुप कराना सचमुच कठिन हो गया।